

श्रीतीश कुमार वेदालंकार



फिर हम  
अनंदुज से  
बहर आई

फिर इस अन्दाज से बहार आई

# फिर इस अन्दाज से बहार आई

[इकतालीस ललित निबन्धों का संग्रह]

क्षितीश कुमार वेदालंकार



आर्य प्रकाशन मण्डल

जगत निवास, निकट महावीर चौक, प्रेम गली,  
गांधी नगर, दिल्ली-११००३१

प्रकाशक : आर्य प्रकाशन मण्डल,  
प्रेम गली, निकट महावीर चौक, गांधीनगर, दिल्ली-११००३१

प्रथम संस्करण : १९७८

मूल्य : पन्द्रह रुपये

मुद्रक : गोयल प्रिंटर्स,  
भोलानाथ नगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

---

FIR IS ANDAAJ SE BAHAR AAE

(Hindi)

By Kshitish Kumar Vedalankar

Price Rs. 15.00

---

## वस्तुकथा

सन् १९७६ का प्रारम्भ। आपातकाल की अंधियारी। कलम और जबान दोनों पर बंदिश। आतंक का दौर। घने अन्धकार को ही ज्योति सिद्ध करने में अपनी बुद्धि का सदुपयोग (!) करने वाला चतुर मसिजीबी वर्ग भले ही प्रसन्न, पर सामान्य बुद्धिजीवी के मन में छुटन। साथ ही यह उड़ती खबर (जो बाद में सत्य प्रमाणित हुई) कि प्रत्येक बड़े समाचार-पत्र के कार्यालय में कुछ ऐसे गुप्तचर कार्यरत हैं जो आपातकाल की या तत्कालीन सरकार की आलोचना करने वाले पत्रकारों पर नजर रखते हैं।

चैत्र का महीना आया। वायु में वसन्त की गंव आई। लेखक की कलम से निकला—फिर इस अन्दाज से बहार आई। और फिर तो प्रति सप्ताह नये-नये रंग में यह बहार आती चली गई। यों दैनिक समाचार-पत्र में कार्य करते हुए राजनीति से असम्पूर्ण रहना कठिन होता है, पर जब लेखनी पर अंकुश हो और राजनीति की चर्चा वर्जित हो, तब स्वतंत्रतेवा व्यक्ति को भी साहित्य ही शरण देता है। वादेवी के विपुल भण्डार में राजनीति सम्बन्धी रत्नराशि तो नग्या ही होगी। साहित्य में लक्षणा और व्यंजना जैसी वृत्तियों तथा वकोक्ति ग्रथान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों ने कलम के मजदूर के हाथ में भी इतनी शक्ति भर दी है कि लखपति भी उसके सामने अस्तमि ठहरता है।

(२०१) दैनिक समाचार-पत्र का पाठक वैसे भी रोज-रोज राजनीतिक चर्चा पढ़ते-पढ़ते उकता जाता है। छुट्टी के दिन भी वही। बड़ी कोफ्त होती है। उस दिन तो कुछ सरस साहित्यिक रचना सामने आए तो अच्छा लगता है। श्री रत्नलाल जोशी जब 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक थे, तब उन्होंने जनता के इस मनोविज्ञान को समझकर रविवार के लिए साहित्यिक अग्रलेख लिखने की परम्परा चलाई थी। हिन्दी पत्र-कारिता के लिए यह सर्वथा नई चीज थी। श्रद्धेय जोशी जी कलम के जादूगर थे। फिर जीवन-भर की साधना का सम्बल उनके साथ था। उनकी बहुभाषाभिज्ञता, उनका शब्द-चयन, कथन का बांकपन और स्वोपन्न प्रतिभा से निस्सूत उनका विषय-

---

१. प्राचीन पालि-ग्रंथों में वर्तुगाथा (वस्तुकथा) शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है जिस अर्थ में आजकल भूमिका शब्द प्रयुक्त होता है।

प्रतिपादन ऐसा अनुपम था कि वे अग्रलेख शीघ्र ही लोकप्रिय हो उठे । विशेष रूप से बुद्धिजीवियों के तो वे हृदय का हार बन गए ।

श्रद्धेय जोशी जी के अवकाश-ग्रहण के पश्चात् 'हिन्दुस्तान' के वर्तमान सम्पादक श्री चन्दूलाल चन्द्राकर ने यह दायित्व मेरे दुर्बल कंधों पर डाला । महाकवि कालिदास के कथनानुसार :

मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति भे गतिः ।

—जैसे हीरे की कनी से छेद की हुई मणि में घागा अनायास प्रवेश करता है, वैसी ही मेरी गति है । हीरे की कनी से जोशी जी पहले ही मणि-वेव कर चुके थे । मुझे उहमें प्रवेश करने में कितनी सफलता मिली, यह निर्णय तो विज्ञ पाठक ही करेंगे । परन्तु सुदूरस्थ पाठकों के पत्रों से यदि कुछ अनुमान लगाया जा सकता है तो केवल इतना ही कहूँगा कि किसी लेखक का उससे अधिक प्राप्तव्य कुछ भी नहीं है । सच तो यह है कि उन पाठकों का ही सबल आग्रह यदि न होता तो ये लेख कभी पुस्तकाकार रूप में न आते ।

## अनुक्रम

१.	फिर इस अन्दाज से बहार आई	(बसन्त के आगमन पर)	६
२.	दया करो श्रीमती एनोफिलीज	(दिल्ली में मच्छरों के प्रकोप पर)	१३
३.	दिल की कहानी	(हृदय संबंधों ललित निबन्ध)	१७
४.	मिडास का पश्चात्ताप	(संदर्भ : आधुनिक विज्ञान और साहित्य)	२१
५.	मर कर भी न छूटा रबत मेरा मयखाने से	(महापुरुषों के मरणोत्तर चरित्र-हनन पर)	२४
६.	आनन्दोत्सव का निमंत्रण	(होली के अवसर पर)	२७
७.	कब तक रहोगे चांद सितारों से दूर-दूर	(चन्द्रयात्रा पर)	३०
८.	कलियुग का सौमरस	(चाय-चर्चा)	३३
९.	तुम न रमो तो मन तुम में रमा करे	(रामनवमी पर)	३६
१०.	रख दे कोइ जरा सी खाके-बतन कफन में	(संदर्भ : चण्डीगढ़ में जिप्सी सम्मेलन)	३६
११.	बाबुल का मीनार	(भाषा-भेद की विडम्बना पर)	४२
१२.	न जाने कितने घरोंदे बना के तोड़े हैं	(संदर्भ : दिवास्वप्न)	४५
१३.	प्रेम न बाढ़ी ऊपर्वे	(प्रेम की महिमा पर)	४८
१४.	मुझको कहां ढूँढे बन्दे मैं तो तेरे पास रे	(संदर्भ : विवाह और भारतीय तत्त्वज्ञान)	५१
१५.	लक्ष्मी जी का मायका	(समुद्रगार्भ में छिपी सम्पदा के दोहन से सम्बद्ध)	५४
१६.	शब्दों की दुनिया		५७
१७.	भारत के ये रसीले राजदूत	(संदर्भ : आमों का निर्यात)	६०
१८.	जब याद करूँ हूल्दीघाटी.....		
		(हूल्दी घाटी की चतुःशती के अवसर पर)	६३
१९.	सुनहु विटप ! हम फूल हैं तिहारे	(वृक्षारोपण सम्पाद्ध के अवसर पर)	६७
२०.	अथ फल प्रकरणम्	(फलों के संबंध में)	७१
२१.	अलकापुरी से लौट आओ, हे मेष !	(वर्षा के अभाव में)	७४

२२.	खेलन में को काको गुसैयाँ	(मॉट्रियल में ओलम्पिक स्टेलों के अवसर पर)	७७
२३	मंगलामुखी का अनावरण	(मंगलग्रह को बाइकिंग यात्रा भेजने पर)	८०
२४.	ना जाने केहि वेश में नारायण मिलि जाय	(वेष सम्बन्धी चटुल चर्चा)	८४
२५.	सौन्दर्य के मानदण्ड	(संदर्भ : सौंदर्य प्रतियोगिता)	८७
२६.	बक्त लिखेगा कहानी एक नए मज़मून की	(संदर्भ : स्वाधीनता दिवस)	९१
२७.	श्रम के स्वेद-बिन्दु	(समृद्धि के लिए श्रम की महत्ता से सम्बद्ध)	९४
२८.	मारीशस में विश्व हिन्दी सम्मेलन		९७
२९.	तस्मै श्रीगुरुवे नमः	(गुरु-पूर्णिमा के अवसर पर)	१०१
३०	संसार की छत पर कालचक्र	(संदर्भ : लद्दाख में लामाओं का दीक्षा-समारोह)	१०५
३१.	देवतात्मा हिमालय		१०८
३२.	रामकथा की व्यापकता	(विजयादशमी के अवसर पर)	१११
३३.	घन-घन गांधी जी महाराज !	(गांधी-जयन्ती पर)	११५
३४.	करि फुलेल को आचमन	(भारतीय गन्धों के सम्बन्ध में)	११६
३५.	तुलसी भीतर बाहरेहु जो चाहेसि उजियार	(दीपावली के अवसर पर)	१२२
३६.	अन्न का पर्वत कहां है ?	(अन्नकूट पर्व पर)	१२५
३७.	गणेशजी से विनम्र प्रार्थना	(गणेश चतुर्थी पर)	१२८
३८.	सविता देव की सेवा में	(संदर्भ : सौर ऊर्जा की खोज)	१३१
३९.	सबसे बड़ा सुख	(संदर्भ : रोग-निवारण)	१३५
४०.	राष्ट्रभूर्ति श्रद्धानन्द	(संदर्भ : श्रद्धानन्द की वलिदान स्वर्ण जयन्ती पर)	१३८
४१.	भारत में वरों की खोज		१४०

## फिर इस अन्दाज से बहार आई

देवताओं ने जब सूष्टि-यज्ञ प्रारम्भ किया, तब उस यज्ञ में धृत क्या था, समिधा क्या थी और आहुति देने के लिए हविसोकल्य क्या था ?

यजुर्वेद के पुरुष-सूक्त में यह प्रश्न किया गया है। फिर वहीं अगले मन्त्र में उसका उत्तर भी दे दिया गया है :

वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद हविः ।

—वसन्त ऋतु थी धृत, ग्रीष्म थी समिधा और शरद ऋतु थी हविष्याल्न ।

वैदिक ऋषियों ने सूष्टि-निर्माण के रहस्यों को अनावृत करने के लिए जिस यज्ञ-चक्र का वर्णन किया है उसमें वसन्त का क्या स्थान है—इस प्रश्नोत्तर से यह स्पष्ट हो जाता है। वसन्त का इतना महत्व न होता तो योगिराज श्रीकृष्ण भगवद्-गीता में अपने विश्व रूप का वर्णन करते हुए ‘ऋतूनां कुसुमाकर’ कहकर स्वयं को ऋतुओं में वसन्त क्यों बताते ? जनता ने भी वसन्त को ऋतुराज यों ही थोड़े कहा है !

संस्कृत के कवियों में ऋतु-वर्णन की ऐसी परम्परा है कि जिस महाकाव्य में इस प्रकार ऋतु-वर्णन न हो उसके काव्यत्व में हीनता मानी जाती है। वसन्त ऋतु किस प्रकार एक-एक कदम रखती हुई आती है, इसका वर्णन संस्कृत के एक कवि ने यों किया है :

कुसुम जन्म ततो नवपल्लवाः तदनुषट्पदकोकिल कूजितम् ।

इति यथाक्रममात्रिरभूमध्यः द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥

—पहले पुष्प का जन्म हुआ, फिर नई-नई कोंपें आई, उसके बाद भौंरे गूंजने लगे, फिर कोयल कूकने लगी, और इस प्रकार क्रमपूर्वक वसन्त ऋतु वनस्थली में उत्तर आई ।

एक और कवि ने वसन्त की विशेषता बताते हुए कहा है :

काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः ।

प्राप्ते वसन्त समये काकः काकः पिकः पिकः ।

—कौआ काला है, कोयल भी काली है, फिर दोनों में भेद क्या है ? जब वसन्त का समय आता है तो स्वयमेव पता लग जाता है कि कौआ कौआ है और कोयल कोयल है ।

कवि-कुल-गुरु कालिदास की प्रतिभा तो प्रकृति-चित्रण में बेजोड़ है। यों सभी कृतुओं के चित्रण में उन्होंने अपनी लेखनी का चमत्कार दिखाया है, पर वसन्त कृतु के प्रति उनका भी पक्षपात कम नहीं है। ‘कुमारसम्भव’ की टक्कर का वसन्त-वर्णन शायद विश्व-साहित्य में दुर्लभ होगा। एक अन्य स्थान पर कवि कहता है : “पलाश-बन में सर्वत्र टेसू के फूल उग आए हैं। जब हवा से वे हिलते हैं तो चारों ओर प्रदीप्त चत्ति की ज्वालाओं की लहर-सी उठ पड़ती है और भूमि कुसुम्भी रंग की साड़ी पहने नई दुलहिन-सी लगने लगती है। … उद्यानों में वायु से हिलते श्वेत कुन्द पुष्प लल-नाओं की अवदात हंसी की तरह बीतराग मुनियों का भी चित्त हरण करने लगते हैं, फिर रागमलिन युवकों के मनों का क्या हाल होता होगा ?” एक अन्य स्थान पर कवि ने नागर जनों को सम्बोधित करते हुए कहा है : “लोकविजयी वसन्त की सवारी आ रही है—आम की नई-नई मंजरी उसके बाण हैं, किंशुक उसका धनुष है, अमरों की पंक्ति धनुष की डोरी है, निष्कलंक शुभ चन्द्रमा उसके सिर पर श्वेत छत्र है, मलयानिल के मस्त हाथी पर वह सवार है, कोकिल-वृन्द उसकी स्तुति में गीत गाने वाले हैं। हे नागरो ! सावधान, लोकविजेता वसन्त आपका कल्याण करे।”

वसन्त की शोभा का वर्णन करते हुए कवि की वाणी जैसे विराम नहीं जानती। वसन्त में अग-जग सब कैसा सुन्दर और रमणीय लगने लगता है, इसको जैसे सार-संक्षेप में समाहित करते हुए कवि कहता है :

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपदं स्त्रियः सकामाः पवन् सुगंधिः ।  
सुखाः प्रदोषाः दिवसाश्च रम्याः सर्वं प्रिये चारूतरं वसन्ते ॥

—हे प्रिये ! लता और पादप पुष्पों से ढक गए, सरोवरों में कमल खिल उठे, स्त्रियों में काम जाग गया, पवन सुगंधित हो उठा, दिवस रमणीय हो उठे और सांक भी (सर्दी के अभाव में) सुखद लगने लगी—वसन्त में जैसे सभी कुछ सुन्दर से सुन्दरतर हो उठा है।

कहावत है—‘आया वसन्त, पाला उड़न्त !’ पर अब ऐसी कहावतें भी पुरानी पड़ गई हैं। इस बार तो वसन्त पंचमी क्या आई, अपने साथ शीत लहर लेकर आ गई। प्रकृति भले ही चर्तुर्दिक् वसन्त के रंग में रंगीन हो रही हो, पर शिमले में हिम-धात क्या हुआ, राजधानी के बुद्धिजीवी गले में गुलबन्द लपेटे और सिर पर चित-कबरी गर्म टोपी ओढ़े अच्छे खासे विद्युषक से दिखने लगे।

आप कहेंगे कि हिमपात हुआ शिमले में, तो ठण्ड राजधानी में क्यों बढ़ी ? इसलिए कि :

कांटा लगे किसी के तड़पते हैं हम ‘अमोर’ ।

सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है ॥

इस प्रकार की घटना न केवल देश की एकता की निशानी है, बल्कि इस बात की भी कि राजधानी के लोग इतने सहृदय हैं कि देश के किसी भी कोने में घटी सुघटना या दुर्घटना से वे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।

बात तो वसन्त की चल रही है। विश्वकवि रवीन्द्र के 'चित्रांगदा' नामक नाटक के प्रथम दृश्य में ही अनंग आश्रम में मदन, वसन्त और चित्रांगदा की भेट होती है। मणिपुर की राजकुमारी चित्रांगदा मदन के चरणों में प्रणाम के अनन्तर वसन्त से पूछती है—“तुम कौन हो देव ?”

उत्तर में वसन्त कहता है—“मैं हूँ ऋतुराज वसन्त ! जरा और मरण—ये दो दानव विश्व को कंकाल-शेष करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। मैं उनके पीछे-पीछे धूमता रहता हूँ और पद-पद पर उन पर रात-दिन आक्रमण करता रहता हूँ। अहर्निश यह संग्राम चल रहा है। मैं हूँ निखिल विश्व का अनन्त योवन !”

वसन्तोल्लास के सार्वजनिक प्रसार का एक चित्र दर्शनीय है जिसमें अनुप्रास-विघान द्वारा उत्कृष्ट नाद-सौंदर्य की आयोजना की गई है। महाकवि पद्माकर का बड़ा प्रसिद्ध पद्य है :

कूलन में, केलिन में, कछारन में, कुंजन में,  
क्यारिन में कलित कलीन किलकंत है।  
कहै पद्माकर परागन में, पौनहु में,  
पातन में, पिकन में, पलासन पगंत है ॥  
द्वार में, दिसान में, दूनी में, देस देसन में,  
देखौ दीप, दीपन में, दीपत दिगंत है ॥  
बीथिन में, ब्रज में, नवेलिन में, बेलिन में,  
बनन में बागन में बगर्यो बसंत है ॥

पद्माकर का नाम लेते ही मतिराम का स्मरण आए बिना नहीं रहता। मति-राम ने एक नई उद्भावना की है जिसे बाद में उर्दू के शायरों ने लपक लिया। कवि कहता है कि कली खिलती क्या है, जैसे चुटकी के संकेत से भ्रमर को बुलाती है :

फूलति कली गुलाब की सखि यह रूप लखै न ।  
मनो बुलावति मधुप को दै चुटकी की सैन ॥

पर नजाकत में उर्दू के शायर भी कम नहीं हैं। मीर नवाब यूनिस का शेर है :

रखती थी फूंक कर कदम अपना हवाये-सर्द ।  
यह खौफ था कि दामने गुल पर पड़े न गर्द ॥

—(जब रंग बिरंगे फूलों के खिलने से धरती मखमली हो उठी तब) शीतल चायु इस डर से फूंक-फूंककर कदम रखती थी कि कहीं फूलों के आंचल पर गर्द न पड़ जाए ।

संस्कृत वाले भी विचित्र हैं। उन्होंने 'प्रकृति' का एक अर्थ प्रजा भी किया है। वसन्त ऋतु में प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों को जैसे कोई हृदयहीन व्यक्ति ही

## १२ — फिर इस अन्दाज से बहार आई

अनदेखा कर सकता है, वैसे ही जो राजनीतिज्ञ प्रजा की नज़ारा को नहीं पहचानता, उसे हृदयहीन ही कहा जा सकता है। जब खेत में चारों ओर सरसों के पीले-पीले फूलों की बहार हो, तब प्रकृति (प्रजा) से सहयोग का इच्छुक पीत परिघान धारण कर्यों न करे !

प्रकृति (और प्रजा) को पहचानने में ‘राजनीति के ऋतुराज’ नेहरू जी भी कम नहीं थे। नेहरू संग्रहालय में उनके हाथ की हिन्दी में लिखी गालिब की ये पंक्तियाँ इस बात का प्रमाण हैं :

फिर इस अन्दाज से बहार आई ।

हुए मेहरो-माह तमाशाई ॥

—फिर बहार इस अन्दाज से आई कि सूरज और चांद भी तमाशबीन बन-कर उसका जलवा देखने लगे ।

## दिया करो श्रीमती एनोफिलीज !

हवा में वासन्ती गंध थी और दक्षिण दिशा के बातायन से मन्द मलयानिल आकर लोरी का काम कर रहा था । अचानक श्रीमती एनोफिलीज ने कान के पास गुनगुनाना प्रारम्भ कर दिया । फिर चिकोटी काटी ।

समाचार-पत्रों में जो यह समाचार छपा है कि दिल्ली में पुनः मच्छरों का प्रकोप होने लगा है, वह गलत नहीं है । मच्छर के साथ मलेरिया तो जुड़ा ही हुआ है । पर सब मच्छरों को बदनाम क्यों किया जाए ? केवल एनोफिलीज नामक नस्ल का मच्छर ही मलेरिया के लिए जिम्मेदार है । आश्वर्य की बात यह है कि जीव-वैज्ञानिकों के कथनानुसार नर-मच्छर मलेरिया का जनक नहीं, केवल मादा-मच्छर ही उसका असली संवाहक है ।

साहित्य में नारी करुणा और ममता की मूर्ति मानी गई है । जब सन्त कवि श्री वियोगी हरि यह सोरठा कहते हैं :

की करुणा रिखवारि, तू ही जीवन-संगिनी ।

है सुरक्षादनहारि, तू ही उरझत जीव की ॥

—तब ऐसा ही लगता है कि वे करुणा-मूर्ति नारी को ही करुणा का प्रतीक बनाकर, उपमान और उपमेय में अभेद कर, मानवात्मा की आदिम आकांक्षा की अभिव्यक्ति ही कर रहे हैं । वही करुणा-मूर्ति मशकी आज इतनी निर्भम क्यों बन गई ?

उसके मन में क्या है—इसे कवि के सिवाय और कौन जाने । तमिल के एक कवि की प्रेमिका अपने प्रेमी से कहती है :

श्राकाश में सर्वत्र

भ्रमण करने वाला—

गगनविहारी—

पूर्ण चन्द्र निकल आया है,

दक्षिण पवन बह रहा है,

अब नींद भाग गई है,

और कोयल रात के

प्रत्येक प्रहर की

आगवानी कर रही है,

ओ प्रियतम !

यह समय सोने का नहीं है ।

— क्या मशकी भी यही कहते आई है ?

संस्कृत के जिन कवियों ने अग-जग का वर्णन किया है, उनकी लेखनी से यदि मशकराज अचर्चित बच जाते तो 'पण्डितः समर्द्दिशः' का यश कलंकित हो उठता । एक कवि ने लिखा है :

प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसम्,  
कर्णे कलं किमपि रौति शनैविचित्रम् ।

छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशंकः,  
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति ।

— पहले पांवों पर पड़ता है, फिर पीठ का मांस नोंचता है, फिर कान के पास आकर धीरे-धीरे गुनगुनाता है और उसके बाद छिद्र देखकर बेखौफ अन्दर दखल जामा लेता है । इस प्रकार दुर्जन जो कुछ करता है, वही सब आचरण मच्छर भी करता है । आखिर दुर्जनता का सारा ठेका मनुष्य ने ही थोड़े ले रखा है ।

विज्ञ जनों का कहना है कि मच्छर तब अधिक पैदा होते हैं जब कहीं पानी खड़ा हो, कूड़ा जमा हो, या इमारतों का तामीरी कार्य जोरों पर हो । पर आपात स्थिति के बाद से इन सब पर काफी अंकुश लग गया है । फिर दिल्ली में मच्छरों का यह आकस्मिक प्रकोप क्यों ?

बेशक, राजघानी का आकर्षण दूर-दूर से अवांछित व्यक्तियों और जीवों को खींच लाता है । पर दिल्ली के मच्छर कहीं बाहर से नहीं आए । कहते हैं कि पिछले दिनों धन कमाने के अनेक अवैध धनधों पर रोक लग जाने के कारण राजघानी के चतुर सुजानों ने भैंसें खरीद ली हैं । एक जानकार के अनुसार तो राजघानी में दस हजार नई भैंसें आ गई हैं । ज्यों-ज्यों सफाई अभियान तेज होता है, त्यों-त्यों घर-घर में ये नई डेरियां खुल रही हैं । इससे जनता को दूध पिलाने की सेवा के साथ-साथ मालिक की मलाई में भी कमी नहीं आती और मच्छरों की पैदावार बढ़ाने से जीव दया का काम भी अनायास हो जाता है ।

सोचते थे कि सामन्त युग की समाप्ति से राजाओं और रानियों के दिन लद गए; पर महिषी और राजमहिषी का युग इस तरह पुनः पदार्पण करेगा, इसकी कल्पना नहीं थी । जब कोई भैंस कीचड़ और दलदल में लोट लगा रही होती है, तब वह अपने आपको राजमहिषी से कम थोड़े ही समझती है । कोई शायर उस भैंस के मनोभावों का चित्रण करने की कोशिश करे, तो शायद हफीज जालंधरी के शब्दों में यही कहेगा :

वह सामने पड़ी है सुराही भरी हुई ।  
दोनों जहाँ हैं आज मेरे इस्तियार में ॥

मच्छर का नाम लेते ही उसके संगी-साथी खटमल का ध्यान न आए, यह कैसे हो सकता है ? खटमल से ब्रह्मा, विष्णु, महेश सब घबराते हैं । संस्कृत के एक

कवि ने बड़े रहस्य की बात बतलाई है :

कमले कमला शेते हरः शेते हिमालये ।

क्षीरावौ च हरिः शेते मन्ये मत्कुण-शंकया ॥

—लक्ष्मी कमल में शयन करती है, महादेव हिमालय में, और भगवान् विष्णु क्षीरसागर में । क्यों ? इसलिए कि वहाँ खटमल की पहुंच नहीं ।

दूसरे कवि ने एक दूसरे रहस्य की खोज की है :

असारे खलु संसारे सारं इवसुर-मन्दिरम् ।

हरो हिमालये शेते हरिः शेते नहोदधौ ॥

—यह संसार तो बिल्कुल सारहीन है, इसमें यदि कुछ भी सार है तो वह केवल श्वशुरालय है (जिसे हिंदी वालों ने 'सुसराल' कर दिया है), तभी तो शिव जी अपने श्वशुर हिमालय के यहाँ ढेरा डाले रहते हैं और विष्णु जी अपने श्वशुर क्षीरसागर के यहाँ ।

बहरहाल, एक बात निश्चित है कि चाहे खटमल का आतंक हो, चाहे सुसराल के माल की मुफ्तखोरी का चस्का हो, यदि महाबली मशक वहाँ होते तो इन देवताओं की नींद हराम किए बिना नहीं छोड़ते । क्योंकि खटमल क्षीरसागर के जल को और हिमालय की हिमराशि को नहीं लांघ सकता । पर मच्छर ? वह तो एक उड़ान भरता है और जल-स्थल की सब बाधाएं दूर ! भारत के जिस 'नैट' विमान ने पाकिस्तान के सेंबर जेटों और कैनबरों के छक्के छुड़ा दिए, वह इसी मच्छर को देखकर ही तो बनाया गया है ।

इस मशक-पुराण की चर्चा करते हुए एक सत्यकथा भी याद आ रही है । एक बार बंगला के स्वनामधन्य, अप्रतिम लोकप्रिय लेखक शरत् बाबू को भी 'मच्छरचन्द्र' नाम धारण करना पड़ा था । एक चिट्ठी आई । डाकिया शरत् बाबू के निवास-स्थान पर आकर पूछने लगा कि यहाँ 'मच्छरचन्द्र' कौन रहते हैं ? शरत् बाबू हैरान । अन्य लोग भी हैरान । बाद में पता लगा कि शरत् बाबू ही 'मच्छरचन्द्र' हैं । लेखक के किसी संस्कृतप्रेमी भक्त ने पते पर श्रीमत् शरच्चन्द्र की संघि करके 'श्रीमच्छरचन्द्र' लिख दिया था ।

अपने पाण्डित्य का उचित अभिमान करने वाले पंडितराज जगन्नाथ ने एक मदोन्मत्त गजराज को सावधान करते हुए कहा है—‘तुम जल्दी से जल्दी इस जंगल से निकलकर अन्यत्र चले जाओ, क्योंकि तुम्हारे गण्डस्थल के भ्रम में विशाल शिलाओं को अपने प्रखर नाखूनों से फाड़ डाढ़ने वाला वनाधिराज केहरी अभी पर्वत की गुफा में सो रहा है ।

स्थिर्ति नो रे दध्याः क्षणमापि मदान्धेक्षण सखे

गज श्रेणीनाथ त्वमिहू जटिलायां वनभुवि ।

असौ कुम्भीश्रान्त्या खरनखर विद्रावितमहो

गुरुग्रावग्रामे—स्वपिति गिरिगर्भे हरिपतिः ॥

१६. — फिर इस अन्दाज से बहार आई

इसी प्रकार छत्पति शिवाजी को औरंगजेब द्वारा कैद कर लिए जाने पर आघुनिक बाण पं० अम्बिकादत्त व्यास ने लिखा था :

शेते करी मशक-पाददिपादिकायाम् ।

—शिवाजी औरंगजेब की कैद में ऐसे रहे मानो मच्छर के पांव की बिवाई में हाथी सो रहा है ।

महादेव और विष्णु जैसे बड़े से बड़े देवता आराम से सो रहे हैं, गजराज जैसे भारी भरकम और वनराज जैसे प्रबल प्रतापी पशु भी आराम से सो रहे हैं । हे श्रीमती एनोफिलीज ! तुम राजधानी के इन निरीह मानवों के पीछे क्यों पड़ी हो ? तुम इनको आराम से क्यों नहीं सोने देतीं ? कुछ तो दया करो हे दयामयी !

## दिल की कहानी

यह तो नहीं कहा जा सकता कि पुराने जमाने के लोगों के दिल होता ही नहीं था, पर इतना अवश्य है कि प्राचीन इतिहास में दिल की बीमारी के उदाहरण नहीं मिलते। और आजकल! दिल की बीमारी इतना आम है कि कुछ लोगों ने तो स्वर्ग जाने का सबसे सुगम साधन इसीको समझ लिया है।

मानव की शरीर-रचना में सबसे आश्चर्यजनक अंग है—हृदय। यह बचपन में और ढंग से परेशान करता है, जबानी में और ढंग से और बुड़ापे में और ढंग से। डाक्टर लोग भी चक्कर में हैं और इसकी सही व्याख्या नहीं कर पाते कि हार्ट अटैक क्या होता है। डॉ बरनार्ड जैसे हृदय-प्रत्यारोपण के विश्वविश्रृत शल्य-चिकित्सक स्पष्ट घोषणा करते हैं कि “मैं नहीं जानता।” शायद सचाई भी यही है।

एक बात समझ में आती है। शायद विधाता की ओर से ही कुछ बुनियादी भूल हो गई है। देखिए न—फेफड़े बनाए दो, गुर्दे दो, आंखें दो और कान भी दो। पर मनुष्य के शरीर में हृदय बनाया सिर्फ़ एक। क्या हृदय का कार्य और अंगों से कुछ कम है? डाक्टरों से पूछिए, वे बताएंगे कि हृदय ही एकमात्र ऐसा अंग है जिसे दिन-रात के चौबीस घंटों में क्षणभर की भी छुट्टी नहीं। हर समय काम-काम-काम। काम भी ऐसी जिम्मेवारी का कि जरा-सी गफलत हुई कि प्राण संकट में। न तो हृदय का ‘फंकशन’ मामूली है, न ‘वर्क-लोड।’ फिर उस बिचारे को कोई ओवर टाइम भी नहीं। समाजवाद के युग में यह भेदभाव सर्वथा अनुचित है।

संस्कृत के पंडितों का कहना है कि संस्कृत का कोई शब्द ऐसा नहीं है जिसका अर्थ उसी शब्द के अन्दर न छिपा हो। उदाहरण के लिए ‘हृदय’ शब्द को ही ले लीजिए। इसमें तीन अक्षर हैं—ह, द और य। और तीनों का अपना अलग-अलग अर्थ हैं। ह, से हरति, द से ददाति, य से यच्छति। हृदय तीन ही काम करता है—सारे शरीर में से अनुद्ध रक्त का हरण करता है (हरति), शुद्ध रक्त को देता है (ददाति) और जिस अंग को जितना चाहिए उतना शुद्ध रक्त बांटता है (यच्छति)। इस प्रकार हृदय का पूरा कार्य-कलाप ‘हृदय’ शब्द के अन्दर आ गया।

हृदय न जमाल्लोर है, न कंजूस है, न तानाशाह है। ऐसे शरीर रूपी राष्ट्र के सच्चे भक्त और विशुद्ध समाजवादी अंग को भी आजकल जितने ग्राधात सहने पड़ते हैं, उतने और किसी जमाने में नहीं सहने पड़े होंगे। तभी तो आजकल हार्ट फैल इतने अधिक होते हैं।

वैज्ञानिकों की एक कल्पना और भी है। उनका कहना है कि संसार के प्राणियों में सबसे अधिक विकासशील प्राणी मनुष्य ही है। इसीलिए संभव है कि इस कार्याधिक्य के कारण किसी दिन मनुष्य में स्वतः ही दूसरा हृदय भी विकसित हो जाए या वैज्ञानिक ही निरन्तर अनुसंधान करते-करते दूसरा हृदय बना डालें। यदि किसी दिन ऐसा हो गया तो बड़े से बड़े कवि की कविता में भी परिवर्तन करना पड़ेगा। क्योंकि अब तक सब कवियों ने दिल को संख्या में एक मानकर ही उसकी लाचारियों और नाचारियों का वर्णन किया है। दूर क्यों जाएं। बात्सल्य रस का अद्भुत स्रोत प्रवाहित करने वाले महाकवि सूरदास ने 'अमरगीत' में कृष्ण-कन्हैया को विस्मृत कर निराकार में मन लगाने का उपदेश देते उद्घव को गोपियों से वह फटकार दिल-वाई है कि उद्घव भी क्या याद करता होगा ! गोपियां कहती हैं :

ऊघो ! मन न भये दस बीस ।

एक हुतौ सो गयौ स्याम संग को आराखै ईस ॥

प्राचीन लोगों ने हृदय की 'एकता' पर इतना बल दिया है कि जहाँ सचमुच दो हृदय हैं, वहाँ भी वे उनको एक कर देना चाहते हैं। 'एक हृदय हो भारत जननी' की बात तो है ही, जब वर और वधु विवाह की वेदी पर बैठते हैं तो संस्कार करवाने वाला पुरोहित दोनों से मन्त्रोच्चारण करवाता है :

मम हृदयमनुहृदयं ते अस्तु ।

मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु ।

मम वाचमेकमना जुषस्व ॥

—मेरा और तेरा हृदय एक हो, मेरा और तेरा चित्त एक हो, मेरी और तेरी वाणी एक हो—इत्यादि ।

दिल की बात आई तो एक फ्रैंच लेखक की छोटी-सी कथा भी याद आई। प्रेमी युवक ने अपनी यौवन-वन-विहारिणी प्रेमिका से कहा : “प्रिये ! सारे संसार का ऐश्वर्य तुम्हारे चरणों पर निछावर कर सकता हूँ। आसमान के तारे तोड़कर तुम्हारे केशपाश में गजरे की तरह गंगूथ सकता हूँ। एक बार तुम सिर्फ इशारा भर कर दो ।”

प्रेमिका ने कहा—“सच ?”

प्रेमी ने कहा—“सच, सच, सच। आशिकों का कॉल कभी झूठा नहीं होता ।”

प्रेमिका ने कहा—“तो फिर अपनी बुढ़िया मां का दिल निकालकर मुझे ला दो। तब मैं तुम्हारी…”

प्रेम में दीवाना युवक सचमुच यह कुछत्य करने पर आमादा हो गया। उसने छुरी से मां का वक्ष चीरकर दिल निकाला और उसे बहुमूल्य तश्तरी में रेशमी रूमाल से ढककर अपनी प्रेमिका को भेंट करने चला।

युवक को लगी ठोकर। वह गिर पड़ा। तश्तरी कहीं, रूमाल कहीं, मां का

दिल कहीं ।

अचानक युवक को मां के उस क्षत-विक्षत धूलि-धूसरित दिल से एक हल्की सी आवाज सुनाई दी—“बेटा ! तुझे कहीं चोट तो नहीं लगी ?”

एक तो जवानी अंधी, उस पर इश्क का ‘मायेपिया’ । तभी तो गालिब ने कहा है :

इश्क ने गालिब ! निकम्मा कर दिया ।

बरना श्रादमी हम भी कभी थे काम के ॥

इस दिल की हकीकत बताते हुए एक उर्दू के शायर ने कहा था :

बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का ।

मगर चौरा तो कतरए-खूं न निकला ॥

पर गालिब को यह हकीकित पसंद नहीं आई । उसने अपनी ओर से एक दूसरी हकीकत बयान कर दी :

दिल में फिर गिरिये ने इक शोर उठाया गालिब ।

आह ! जो कतरा न निकला था, सो तूफां निकला ॥

—दिल में जब रुदन का सागर उमड़ पड़ा तो वह कतरा न होकर पूरा तूफान ही बन गया ।

असल में कारण यह है कि दिल जैसी पवित्र चीज को लोगों ने खरीद-फरोख्त की जिन्स बना दिया है । फिर व्यापार में तो घाटा-नफा चलता ही रहता है । इसीलिए सीमाब अकबराबादी ने नेक सलाह दी है :

मुहब्बत नाम है लाहासली-ओ नातमामी का,

मुहब्बत है तो दिल को फारगे सुदो-जियां कर ले ॥

—प्रेम में सफलता का प्रश्न ही नहीं ! प्रेम तो असफलता और अपूर्णता का ही नाम है । यदि सचमुच प्रेम करना है तो दिल को हानि-लाभ के भाव से रहित कर दे ।

हृदय की चंचलता ही इन सब खुराकातों की जड़ है । इसीलिए उमर खेयाम ने कहा है :

गर जोहरा बवद मुतरिबो ईसा हमदम ।

चूं दिल न बजाबवद न जाए तर ब अस्त ॥

—(हे साकी ! यदि संसार के समस्त विलास के साधन मौजूद हों) और संगीत तथा पैगम्बर भी सहायक हों, तब भी अगर दिल चंचल है, स्थिर नहीं, तो आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता ।

पुराने शायरों की चर्चा हो चुकी । अब एक आधुनिक शायर की साफगोई देखिए :

२० — फिर इस अन्दाज से बहार आई

न अदा की थी शरारत न नजर का था इशारा ।  
मैं किसी का नाम क्यों लूँ, मेरे दिल ने मुझको मारा ॥

असल में सब झगड़ों की जड़ यह दिल ही है । न दिल हो, न व्यर्थ की परे-  
शानी हो । हृदयहीन होना सबसे अच्छा । नहीं तो मेरठ जिले के निवासी शेख  
अब्दुल बारी 'आसी' उलदनी का यह कलाम सच होकर रहेगा :

अगर दिल सलामत रहेगा तो 'आसी !'  
बहुत मिल रहेंगे दगा देने वाले ॥

## मिडास का पश्चात्ताप

यूनान के पौराणिक साहित्य की एक कथा है : मिडास चाहता था कि मैं संसार का सबसे ऐश्वर्यशाली व्यक्ति बन जाऊँ । उसने देवताओं की आराधना की । देवता सचमुच प्रसन्न हो गए । उन्होंने मिडास को वर दिया कि तुम जिस चीज को छुओगे, वही सोना बन जाएगी ।

मिडास के हर्ष का पारावार न रहा । उसने आसपास के काठ-कवाड़ को छू-छूकर देखा । सब सोना बनता गया । देखते-देखते महल का सब फर्नीचर सोने का बन गया । चारों तरफ सोना ही सोना ।

उसे भूख लगी । खाना परोसा गया । जिस खाद्य-पदार्थ को भी उठाए, वही सोने का बनता जाए । सोचा—खाना न सही, पानी तो पी लूँ । पानी को छुआ, तो वह भी सोना बन गया ।

इतने में ही उसकी छोटी लड़की दोड़ी-दोड़ी आई और आकर अपने पापा की गोद में बैठ गई । राजा ने अपनी दुलारी बेटी को प्यार से दुलराना चाहा । पर अपनी गोद में बिटिया के स्थान पर स्वर्णमूर्ति देखी तो उसने पश्चात्ताप में अपना सिर पीट लिया ।

भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से एक लाख रुपये का पुरस्कार प्राप्त करते हुए मराठी के विश्रुत साहित्यकार श्री विष्णु सुखाराम खांडेकर ने अपने अभिनन्दन का उत्तर देते हुए आधुनिक विज्ञान की मिडास से तुलना की है ।

विज्ञान की मिडास से तुलना केवल कवि-कल्पना नहीं है । सोने की खोज से ही विज्ञान की शुरुआत हुई थी । न मनुष्य पारस पत्थर की खोज में निकलता, न विज्ञान का जन्म होता । इसका प्रमाण है अंग्रेजी का 'अलकेमी' शब्द, जो मूलरूप से अरबी शब्द 'कीमिया' से बना है । कीमियागिरी का मतलब कभी लोहे से सोना बनाना ही समझा जाता था । यों भाषा की नस पहचानने वाले भाषा-विज्ञानियों का कहना है कि कभी इस हुनर में मिस्त्र के निवासी माहिर थे और कीमिया का अर्थ 'मिस्त्री हुनर' ही था । जिस जमाने में मिस्त्र को 'खीम' कहा जाता था, उसी जमाने में अरब के लोगों ने इस विद्या को 'खीमिया' कहना शुरू किया, जो बाद में 'कीमिया' बन गया । उसी कीमिया से कैमिस्ट्री का जन्म हुआ ।

ऊपर जो मिडास की कथा दी गई है, उसमें एक बात 'पुनश्च' की तरह और जोड़ने की है । अपोलो ने जब मिडास को यह वर दिया था कि जिस चीज को वह छूएगा, वह सोना बन जाएगी, तब साथ ही मिडास को गधे के कान भी दिए थे जिससे संगीत के जादू से वह प्रभावित न हो सके । इसीलिए अंग्रेजी में 'मिडास के

कान' का भी आलंकारिक अर्थ है।

विज्ञान सचमुच जादू की छड़ी है। अध्यात्म तो 'एकोऽहं वहु स्याम्' कहकर ही रह गया, पर विज्ञान ने अपनी यन्त्रशक्ति के बल पर एक वचन को इतनी द्रुत गति से बहुवचन में बदलना शुरू किया कि आदमी को लगा कि अब संसार की सारी सुख-सुविधा मेरे हाथ में आ गई।

और सचाई क्या यही नहीं है? कभी महाबली रावण के बारे में कहा जाता था कि वह सोने की लंका में रहता था। स्वयं वरुण देवता उसके यहां पानी भरते थे, अग्नि देवता रसोईघर में खाना बनाने के लिए हाथ बांधे खड़े रहते थे और पवन देवता स्वयं पंखा हाथ में लेकर हवा किया करते थे। विज्ञान की जादू की छड़ी के प्रताप से ये सब देवता क्या आज महानगरों में जन-सामान्य के वशंवद नहीं बन गए हैं? जरा-सा बटन दबाइए, पानी हाजिर, बटन दबाइए, विजली हाजिर; बटन दबाइए, पंखा हाजिर; बटन दबाइए, गैस हाजिर।

पर ज्यों-ज्यों यह समृद्धि बढ़ती गई, मानव का लोभ बढ़ता गया, तृष्णा बढ़ती गई, चिन्ता बढ़ती गई, संघर्ष बढ़ता गया। विल्कुल मिडास की सी स्थिति हो गई।

श्री खांडेकर समस्या के मूल तक पहुंचकर कहते हैं कि इस समय मानव को दो काम करने हैं: शाश्वत मूल्यों में अविचल आस्था और नये मूल्यों के साथ उस आस्था का समन्वय। यह काम कठिन है, पर यही करणीय है। साहित्यकार का काम भी यही है कि वह मानव जाति को इस दिशा में ढालने में सहायक हो।

शाश्वत मूल्य क्या है और नये मूल्य क्या हैं, इस पर बहस करने वालों ने कम बहस नहीं की। पर उस बहस में आग्रह और अभिनिवेश की मात्रा जितनी है, उतनी भर्म तक पहुंचने की और जीवन को जीने योग्य बनाने की नहीं। तत्त्व की बात इतनी ही है कि धैर्य, साहस, दया और प्रेम—ये शाश्वत मूल्य हैं, और समानता, सामाजिक न्याय और आर्थिक शोषण से मुक्ति—ये आवृत्तिक मूल्य हैं।

निस्सन्देह सम्यता और प्रगति की दौड़ में विज्ञान ने वर्म को परास्त कर दिया है और इस बाड़ में पुराने विश्वास और मान्यताएं बह गई हैं। उनके स्थान पर विज्ञान और प्रविधि (टैकनोलॉजी) सिहासन पर जमकर बैठ गए हैं। पर जब सामान्य मनुष्य देखता है कि विज्ञान के चमत्कारों से वह वंचित है, तो वह क्षोभ और आक्रोश से भर उठता है। उसे जीवन निरर्थक लगने लगता है। उसे लगता है कि जीवन क्या है—ज्वारग्रस्त अगाव तूफानी समुद्र में बिना पतवार की नाव। विज्ञान ने मनुष्य को अलादीन का चिराग सौंपा था। विज्ञान ने कहा था—‘खुल जा सिमसिम’—और समृद्धि का द्वार खुल गया। परन्तु मनुष्य ने समृद्धि का द्वार खुलने के साथ ही अपने हृदय के कपाट बन्द कर लिए। ये कपाट बन्द होने से अन्दर के बिच्छू भी अन्दर ही बन्द हो गए।

अब विज्ञान ने साहित्य के समक्ष नई चुनौतियां उपस्थित की हैं। जिस युग में समझदारी के सामने ताम-भाम और आडम्बर प्रवृत्त हो उठे और मानवीय संवेद-

दना के स्थान पर प्रभुता की होड़ हो, मानव स्वतंत्र इच्छा शक्ति शून्य जड़यन्त्रवत् व्यवहार करने लगे, उस युग में मानव-जाति को आत्मविनाश से बचाने के लिए साहित्य ही अमृत-संजीवनी का काम करेगा।

अस्तित्ववाद के आधुनिक सन्त ज्यां पाल सार्व का कहना है :

मनुष्य मशीन का महज एक पुर्जा नहीं है, मानव भाग्य या परिस्थिति के हाथ का खिलौना नहीं है, वह कठपुतली या रोबोट नहीं है; वह वही है जो वह स्वयं को बनाता है, और स्वयं को वह जैसा बनाता है, उसके लिए जिम्मेदार भी वही है।

वामपंथी विचारधारा के पुरस्कर्ता और अपनी नास्तिकता के लिए विस्थात डा० जूलियन हासले का कथन है :

मैं मानता हूँ कि जीवन में ऐसे मूल्यों का अस्तित्व है जिनमें काया और इन्द्रियों के सामान्य सुखों से ऊपर उठकर उदात्त प्रेम, सौंदर्य, सत्कर्म और सृजनात्मक प्रवृत्तियों से प्राप्त सन्तोष शामिल है। ये मूल्य मनुष्य को किसी दैवी शक्ति द्वारा वरदान में नहीं मिले हैं, ये मनुष्य के अपने स्वभाव की उपज है। प्रेम की चरम अनुभूति इन्द्रियों के सुख से ऊँची है; निस्वार्थ भावना का मूल्य स्वार्थ-प्रेरित कार्यों से कहीं अधिक है।

अफीकियों की सेवा में अपना जीवन गुजारने वाले, सम्यता के दर्शन पर अपने ग्रंथों द्वारा नई रोशनी डालने वाले, अध्यात्मशास्त्री डा० अलबर्ट श्वाइजर का कहना है :

यह सच है कि जहां व्यक्ति ने एक बार अपने लिए जीना छोड़कर दूसरों के लिए जीना शुरू किया कि उसका अपना जीवन अधिक कठिन हो जाएगा, लेकिन साथ ही अधिक समृद्ध, अधिक सुन्दर और अधिक सुखद भी।

खलील जिब्रान की एक लघु कथा याद आ रही है :

एक दिन मैं एक खेत के पास से गुजर रहा था। वहां किसान ने एक बांस पर हाँड़ी बांधकर और उसे कुर्ता पहनाकर बनावटी आदमी खड़ा कर रखा था। मैंने उससे कहा—“बरसात आती है, घूप आती है, तुम यहां इसी तरह तने खड़े रहते हो। तुम्हें ऊब नहीं आती? बवराहट नहीं होती?”

बनावटी आदमी बोला—“बिल्कुल नहीं। पक्षियों को डराने में इतना मजा आता है कि मैं सब कुछ भूल जाता हूँ।”

मैंने कहा—“आदमी को डराने में तो मुझे भी बड़ा मजा आता है।”

बांस का वह आदमी हंसने लगा और बोला—“तो क्या तुम भी मेरी तरह बनावटी आदमी हो।”

## मरकर भी न छूटा रब्त मेरा मयखाने से

मनुष्य में ऐसा कौन सा तत्त्व है जो उसे अन्य प्राणियों से पृथक् करता है। इस विषय पर दार्शनिकों ने अपनी और से काफ़ी मगजमारी की है। अन्त में अरस्तू का यह कहना ठीक लगता है : 'मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है।'

फिर राजनीति क्या है—इसके बारे में भी कम ऊहापोह नहीं हुई। अमरीकी हास्यरस लेखक और फ़िल्म अभिनेता विल रोजर्स का कहना है—“लोगो ! मैं तुम्हें बताता हूँ। सब राजनीति सेव की चटनी है।”

पर लगता है बाद में स्वयं उसीको राजनीति में सेव की चटनी जैसा रस नहीं आया। तभी तो उसने दूसरी जगह कहा है : “जितनी आजादी जेल में होती है, उससे अधिक आजादी राजनीति में नहीं होती।”

“नार्वे के प्रसिद्ध नाटककार और कवि हेनरिक इब्सन ने तो राजनीतिज्ञों से चिढ़कर यहां तक कह दिया है :

वैज्ञानिक लोग जानवरों की चीर-फाड़ कर उन्हें जो-जो तकलीफ देते हैं वह अक्षस्थ है, वे पत्रकारों और राजनीतिज्ञों पर अपने परीक्षण क्यों नहीं करते।

लगता है कि इब्सन पत्रकारों से भी कम परेशान नहीं रहे होंगे। पर अमरीकी इतिहास-बेत्ता हेनरी एडम्स ने जो बात कही है, वह बहुत गहरे पैठकर ही कही जा सकती है। उसका कहना है :

तथ्यों की उपेक्षा करने में ही व्यावहारिक राजनीति निहित है।

पर हमारे मन में राजनीति की एक और परिभाषा उमड़ रही है। वह है : जो मरने के बाद भी पीछा न छोड़े, उसका नाम राजनीति है।

संस्कृत में कहावत है : ‘मरणान्तानि वैराणि’—दुश्मनी तभी तक रहती है जब तक व्यक्ति मर नहीं जाता।\* पर राजनीति की बात निराली है—यहां मरने के बाद दुश्मनी की बेल और हरी होती है।”

राजनीतिज्ञों के साथ ही ऐसा क्यों होता है, अन्य व्यक्तियों के साथ क्यों नहीं, इसका समाधान संस्कृत के एक कवि ने दिया है :

तृणानि नोन्मूलयति प्रभंजनो मूढ़नि नीच्चैः प्रण्तानि सर्वतः ।

समुच्छृङ्गानेव तरुन् प्रबाघते महान् महत्येव करोति विक्रमम् ॥

—आंधी नीचे झुके हुए घास के कोमल तिनकों को नहीं उखाड़ती, ऊचे उठे हुए पेड़ों को ही घराशायी करती है, क्योंकि महान् महान् में ही अपना पराक्रम दिखाता है।

“ राजनीतिज्ञ से बढ़कर महान् और कौन होगा ? वह तो हमेशा आंधी के ओड़े पर सवार रहता है, इसलिए आंधी भी उसीसे दास्ता रखती है । ”

अपने व्यवहार में फौलाद (स्टील) को मात करने वाले स्टालिन के सामने कभी खुश्चेव को भी नाचना पड़ा था । जब खुश्चेव का जमाना आया, तब स्टालिन जीवित नहीं था, पर उसकी कब्र तो थी । उसकी कब्र की दुर्घति हुई । पर जब खुश्चेव का जमाना लद गया, तो फिर स्टालिन के शव को उस कब्र में से हटाकर नई जगह दफनाया गया और वह स्थान रूस का राष्ट्रीय तीर्थ बन गया । ”

अभी हाल में बंगबन्धु शेख मुजीबुर्रहमान की सबन्ध-बांधव निर्मम हत्या के साथ यह बात भी भूलने वाली नहीं है कि एक समय उनके प्रति शोक प्रकट करना भी अपराध था, पर समय ने पलटा खाया तो जनता का हजूम उस मकान पर ही अपनी श्रद्धांजलि के पुष्प चढ़ाने उमड़ पड़ा जहां बंगबन्धु रहा करते थे । ”

“ कैसी-कैसी सत्य-असत्य घटनाएं इन राजनीतिक महापुरुषों के साथ जोड़ दी जाती हैं—इसका एक उदाहरण मिस्र के स्वर्गस्थ राष्ट्रपति श्री नासिर के साथ भी सम्बद्ध है । हाल में ही एक खबर उड़ी कि सऊदी अरब के शाह सऊद ने नासिर को इजरायल के साथ संघर्ष में मिस्र की सहायता के लिए डेढ़ करोड़ डालर दिए थे, जो नासिर ने एक विदेशी बैंक में अपने व्यक्तिगत नाम से जमा करवा दिए ताकि आड़े वक्त में काम आ सकें । जिस व्यक्ति ने मिस्र की स्वतन्त्रता के लिए और अरब राष्ट्रों की एकता के लिए अपना सारा जीवन लगा दिया, उसके प्रति इस प्रकार की खबर निस्संदेह जनता के मन से उसकी यशःपूत्र प्रतिमा को अपदस्थ करने का एक कुत्सित प्रयत्न-कात्र था । क्योंकि बाद में जांच करने पर यह स्पष्ट हो गया कि सऊदी अरब के शाह ने वह रुपया दिया अवश्य था, और वह विदेशी बैंक में जमा भी हुआ था, किन्तु यथासमय वह मिस्र की सरकार को मिल गया था, और उससे नासिर ने कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं उठाया था । ”

“ इसी प्रकार की यश-विद्वांसी घटनाएं अमरीका के राष्ट्रपति जॉन एफ० कैनेडी के बारे में भी उड़ रही हैं । जिस व्यक्ति की मृत्यु की तुलना अब्राहम लिंकन और महात्मा गांधी की मृत्यु से की गई थी और जो सचमुच एक ‘हीरो’ की मौत मरा था, अब उसको बदनाम करने के लिए उसके तरह-तरह के हुए-अनहुए प्रेम-प्रसंगों की चर्चा की जा रही है । राष्ट्रपति कैनेडी की महिला निजी सचिव द्वारा कैनेडी के साथ मेरे ‘बारह वर्ष’ नामक पुस्तक लिखी गई है । यह सब इसलिए कि स्वर्गस्थ राष्ट्रपति के भाई एडवर्ड कैनेडी जिन्होंने संसार के संघर्षरत और विपद्ग्रस्त स्थानों की स्वयं यात्रा करके (जिनमें बंगला देश भी शामिल है) वहां की जनता के न्यायोचित अधिकारों की मांग का समर्थन किया था, वे अमरीका के आगामी चुनावों में राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के रूप में कहीं खड़े न हो जाएं । ”

इसी प्रकार अमरीकी प्रेजिडेण्ट रूजवेल्ट और ब्रिटिश प्रधानमन्त्री लायड जार्ज तथा विन्स्टन चर्चिल के चरित्र-हनन के लिए भी उनके सचिवों द्वारा पुस्तके प्रकाशित की गई हैं ।

२६ □ फिर इस आन्दोज से बहार आई

चरित्र-हनन के ऐसे प्रयास स्वर्गस्थ व्यक्तियों के लिए ही नहीं हुए, कभी-कभी जीवित व्यक्तियों को भी ऐसी विडम्बनाओं का शिकार होना पड़ता है। आजकल चीन के उपप्रधानमन्त्री तेंग शियाओ पिंग इसी प्रकार के आन्दोलन के शिकार हैं। आश्चर्य की बात यह है कि इस आन्दोलन का नेतृत्व कर रही है माझों की पत्नी चियांग चिंग जो स्वयं कभी फिल्म अभिनेत्री थी।

क्या यश-अपयश किसीके बस की बात है? गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं :

सुनहु भरत भावी प्रबल विलखि कहेज मुनिनाथ ।

हानि-लाभ जीवन-मरण जस-अपजस विधि हाथ ॥

पर आज का बुद्धिवादी मानव विधि के हाथ कुछ भी छोड़ने को तैयार नहीं। वह तो सब कुछ अपने हाथ में रखना चाहता है। अगर जीते जी किसी पर बस न चले, तो उसके मरने के बाद सही। तब तो कोई प्रतिकार करने आएगा नहीं। ऐसी हालत में उर्दू के प्रसिद्ध शायर जिगर मुरादाबादी का यह शेर याद आता है :

मुझे-ऐ शोरे-महशर ! तूने क्यों चाँका दिया उठकर ।

बलाएं ले रहा था बेखुदी में अपने कातिल की ॥

—अरे ओ, प्रलय के कोलाहल ! तूने मुझे क्यों चाँका दिया, मैं तो अपनी बेखुदी की मस्ती में अपने कातिल की बलाएं ले रहा था ।

आदमी सोचता है कि मरने के बाद संसार के सब झगड़ों से छुट्टी मिल जाएगी। यह बात किसी और के लिए भले ही सही हो, पर राजनीतिज्ञ के लिए नहीं। उसे मरने के बाद भी छुट्टी नहीं। वह तो इस शायर के स्वर में स्वर मिलाकर यही कहने को बाध्य होगा :

मर कर भी न छूटा रब्ल मेरा मयखाने से ।

मेरे हिस्से की छलक जाती है पैमाने से ॥

## आनन्दोत्सव का निमंत्रण

रामानन्द चटर्जी 'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक थे। जब बोलपुर में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शान्तिनिकेतन के नाम से अपना नये ढंग का स्कूल खोला, तब रामानन्द चटर्जी ने भी अपने लड़के को वहाँ पढ़ने और संस्कार-सम्पन्न बनने के लिए भेज दिया।

तीन महीने बाद रामानन्द चटर्जी यह देखने पहुंचे कि विद्यालय कैसा चल रहा है और लड़के ने क्या प्रगति की है। वहाँ जाकर उन्होंने जो कुछ देखा उससे उन्हें बड़ी निराशा हुई।

एक बड़े वृक्ष के नीचे रवि वातू बैठे हैं। दस-बारह बच्चे उनके आसपास विराजमान हैं। कक्षा चल रही है। पास जाकर देखा तो पता लगा कि जितने बच्चे नीचे बैठे हैं, उतने ही पेड़ के ऊपर चढ़े हुए हैं।

यह कौसी कक्षा है, कैसा अनुशासन? रामानन्द चटर्जी ने गुरुदेव से कहा : "यह क्या हो रहा है? देखकर दुःख होता है। लड़के पेड़ पर चढ़े हुए हैं। यह पड़ाई का कौन-सा ढंग है?"

गुरुदेव ने कहा : "पेड़ पर फल पक रहे हैं और उनकी सुगन्ध हवा में लहरा रही है। वृक्ष पुकार-पुकारकर निमंत्रण दे रहा है। बच्चे इस निमंत्रण को सुनकर वृक्ष पर नहीं चढ़ेंगे, तो और कौन चढ़ेगा। दुखी मैं भी हूँ और उन बच्चों को देखकर सचमुच हैरान हूँ जो उस निमंत्रण को अनुसुना करके नीचे बैठे हुए हैं। मैं बूढ़ा हो गया हूँ इसलिए वृक्ष पर नहीं चढ़ पाया। पर ये बच्चे भी अभी से बूढ़े हो गए, यह देखकर मुझे भी कम दुःख नहीं होता, कम हैरानी नहीं होती। जो बच्चे ऊपर चढ़े हैं, उन्होंने यह निमंत्रण स्वीकार किया है, पर जो नीचे बैठे हैं, वे इससे बेखबर हैं और अनजाने ही इस आनन्दोत्सव से वंचित हैं।"

वसन्त जब आया था तब टेसु के फूलों से निस्सूत के सरिया रस से पलाश-पत्र पर आम-मंजरी की कलम से निमंत्रण-पत्र लिखकर और उसे पियराई सरसों के वासन्ती लिफाफे में रखकर, वसन्त-दूती मिठबोली कोयलिया होली के आनन्दोत्सव का बुलावा घर-घर बांट आई थी। अब कोई हृदयहीन उस इवारत को न समझ पाए तो प्रकृति का यह महान् आनन्दोत्सव रुकने वाला नहीं।

प्रकृति के इसी महान् आनन्दोत्सव की सूचना देने के लिए जब रसिक-शिरो-मणि, आनन्दकन्द ब्रजचन्द भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने होंठों पर रखी बांस की उस छोटी-सी नली में प्राण फूके थे, तो गोपियाँ अपना घर-बार छोड़कर और सगे सम्बन्धियों को भूलकर आनन्दोत्सव में सम्मिलित होने के लिए निकल पड़ी थीं। मुरली-

धर के अधरों से वेणु का स्पर्श होते ही जो निनाद दिशाओं में प्रसृत हुआ, उसे सुन-कर तो श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार सर्वज्ञ होकर-भी ब्रह्मा-विष्णु-महेश तथा अन्य देवतागण मुग्ध हो गए। फिर गोपियों की क्या बिसात ! वे तो सुधबुध भूलतीं ही। अब उन गोपियों के सामने कोई योग की, ज्ञान की और निर्गुण की बात करे, तो महाकवि सूरदास के शब्दों में वे इसके सिवाय और क्या कहेंगी :

मधुकर हम अयान अति भोरी ।

जानें कहा जोग की बातें, जे हैं नवलकिशोरी ॥

हो सकता है, वैकुण्ठ लोक में भी इस प्रकार की रासलीला और आनन्दोत्सव के आयोजन होते हों, पर वैकुण्ठ से मथुरा का ही महत्व अधिक है। 'लघुभागवता-मृत' में कहा है :

अहो मधुपरी वन्या वैकुण्ठाच्च गरीयसी ।

दिनमेकं निवासेन हरी भक्षितः प्रजायते ॥

—वन्य है यह मथुरा नगरी, इसकी महिमा वैकुण्ठ से अधिक है, क्योंकि यहां एक दिन के निवास से ही श्रीकृष्ण में अनुराग पैदा हो जाता है।

जो बात मथुरा के साथ है, वही बात अयोध्या के साथ है। गोस्वामी तुलसी दास ने स्वयं श्रीराम के मुख से कहलवाया है :

यद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना । वेद-पुरान विदित जग जाना ॥

अवध-सरिस प्रिय मोहिन सोऊ । यह प्रसंग जाने कोउ कोऊ ॥

अतिप्रिय मोहि इहाँ के वासी । मम घामदा पुरी सुखरासी ॥

मथुरा और अयोध्या तो प्रतीक मात्र हैं। अभिप्राय तो इहलोक अर्थात् इस संसार से है। परलोक की चिन्ता करने वाले वैकुण्ठ के पीछे भागते फिरें, रसग्राही को तो इसी लोक की मथुरा और अयोध्या चिरकाल से अपनी प्रपञ्चगोचर आनन्द लीला का निर्मत्रण देती रहती है।

सच तो यह है कि वैकुण्ठ लोक को आनन्दोत्सव की आवश्यकता है ही नहीं। इसकी आवश्यकता तो इसी लोक को है। क्योंकि मानव ही तो राग-द्वेष तथा ईर्ष्या के वशीभूत होकर नाना प्रकार के दुःखों के दावानल से अन्दर ही अन्दर दग्ध होता रहता है। दुःखों के द्रारुण और दीर्घ मरुस्थल में होली जैसे त्योहारों पर आनन्द-उत्सव के ये क्षण हरे-भरे शादी का काम करते हैं और जीवन को जीने के योग्य बनाते हैं। यदि मानव को इस लोक में जीने की इस विद्या से परिचय नहीं होता तो वैकुण्ठ या परलोक में जाकर भी उसे चैन नहीं पड़ता। जिगर मुरादाबादी ने इसी भाव को अपने ढंग से यों कहा है :

करेंगे भरके बकाए-दवाम क्या हासिल ।

जो जिदा रहके मुकामे हथात पा न सके ॥

—मरने के बाद उन्हें अमरत्व का सुख क्या मिलेगा जो जिन्दा रहते हुए ही जीवन के योग्य स्थान न पा सके।

जब उम्र का पैमाना भरना ही है, तो उसमें दुःख-दैन्य और उदासी का कूड़ा-

करकर क्यों भरता है यह नादान इन्सान ! क्यों न वह उसमें आनन्द और आळ्हाद के हीरे-मोती भरे ! दुनिया में दुर्लभ इनमें से एक भी नहीं है । अन्तर इतना ही है कि कूड़ा अनायास रास्ते में पड़ा हुआ मिल जाएगा, पर आनन्द का हीरा तो प्रथलपूर्वक तलाश ही करना पड़ेगा ।

वनर्डिंशा का कहना है कि :

तुम्हें आनन्द का उत्पादन किए बिना आनन्द के उपभोग का अधिकार नहीं है, जैसे सम्पदा का उत्पादन किए बिना किसी को उसके उपभोग का अधिकार नहीं है ।

उस आनन्द का उत्पादन कैसे किया जाए, जब यह प्रश्न उपस्थित होता है, तब एक भिखारी की कथा याद आती है । कुष्ठ का रोगी, महानगरी का वह भिखारी तीस साल तक लगातार भीख मांगते-मांगते एक दिन मर गया, तो उसकी लावारिस लाश को नगरपालिका के कर्मचारी श्यमशान घाट में ले जाकर फूंक आए । कर्मचारियों ने सोचा—जिस स्थान पर बैठकर यह भिखारी इतने असे तक भीख मांगता रहा, वह स्थान भी कुष्ठ के कीटाणुओं से दूषित हो चुका है, इसलिए उस स्थान की थोड़ी-सी मिट्टी भी खुदवाकर फेंक दी जाए । जब मिट्टी खोदी गई तो वहां बड़ा खजाना मिला । लगातार तीस साल तक उसी खजाने के ऊपर बैठकर वह भिखारी एक-एक पैसे की भीख मांगता रहा, पर उसे स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि जहाँ मैं बैठा हूँ, वहां कोई खजाना भी हो सकता है ।

मानव भीख मांगने में मस्त है । उसे पता नहीं कि मेरे नीचे खजाना छिपा है । वसन्त का यह आनन्दोत्सव उसी खजाने की ओर संकेत करने आया है ।

## कब तक रहोगे चांद सितारों से दूर-दूर

धरती ने आकाश की ओर देखा । आकाश में चमकते असंख्य तारों की बरात देखकर वह ठगी-सी रह गई । उधर आकाश ने धरती की ओर देखा तो रंग-विरंगों फूलों की शोभा देखकर वह भी आश्चर्य से मुर्ख हुए बिना नहीं रहा ।

किसी तत्त्वज्ञानी ने कहा—पृथ्वी जिन तारों पर मुर्ख हो रही है, वे आकाश के फूल ही तो हैं । और आकाश जिन फूलों पर मुर्ख हो रहा है, वे धरती के तारे ही तो हैं । आकाश में खिले तो तारे, और धरती पर खिले तो फूल, दोनों में कोई अन्तर नहीं ।

पर तत्त्वज्ञान की यह बात न पृथ्वी को पसन्द आई, न आकाश को । दोनों एक-दूसरे की ओर ललचाई नजरों से देखते आ रहे हैं । शायद इसके मूल में है प्राप्त के प्रति असंतोष और अप्राप्त के प्रति आकर्षण ।

अप्राप्त के प्रति इस आकर्षण का ही परिणाम है कि मानव-जननी सदा यह कामना करती रही कि आकाश का चन्द्रमा उसकी गोद में आकर खेले । आज भी किसी वात्सल्यमयी माँ के लिए अपने लाडले के लिए 'मेरा चंदा !' से बढ़कर प्यारा सम्बोधन और क्या होता है ? तभी तो सत्ययुग की माता ने अपने बालक का नाम रखा—हरिश्चंद्र । ब्रेता की कौशल्या ने नाम रखा—रामचंद्र । द्वापर की देवियों ने नाम रखा—कृष्णचन्द्र । कलियुग की माता ने नाम रखा—(मोहनदास) करमचन्द्र (गांधी) और सुभाषचन्द्र (नेताजी) । चन्द्र, चन्द्र, चन्द्र । इन सब नामों में चन्द्रमा को अपनी गोद में खिलाने की ललक स्पष्ट दिखाई देती है ।

जब मानव पृथ्वी पर रहने-रहते उकता गया तब उसने 'लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दयार में' कहकर चन्द्र-यात्रा की ठानी और उसमें सफलता भी प्राप्त कर ली । अब से पच्चीस साल पहले चन्द्र-यात्रा की बात पर कौन विश्वास करता ! और अब से सौ साल पहले तो हवाई जहाज में बैठकर आकाश में उड़ने की बात भी विज्ञ जनों के समक्ष उपहास की वस्तु ही समझी जाती ।

कांग्रेस के संस्थापक सर ए० ओ० ह्यूम और आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द—दोनों समकालीन थे । जब ह्यूम साहब को पता लगा कि ऋषि दयानन्द वेदों में विमान-विद्या की बात कहते हैं तो उन्होंने भरपूर मजाक उड़ाया और कहा—“भला आदमी कहीं आसमान में उड़ सकता है !” सन् १८६३ में राइट बन्धुओं द्वारा हवाई जहाज के आविष्कार से पहले की सुशिक्षित पीढ़ी भी उसी तरह की बात कहती ।

पर अब जमाना बदल गया । अब विमान-यात्रा ही आम नहीं हो गई,

कुछ सालों में चन्द्र-यात्रा और अन्तरिक्ष में बस्तियों की बात भी आम होने वाली है।

जादूगर मैनड्रेक ने पता नहीं किन-किन दूरस्थ लोकों और आकाशगंगाओं की यात्रा की थी। वह सब उसके जादू का प्रताप था। पर अब विज्ञान का जादू मैनड्रेक से भी आगे बढ़ने की तैयारी में है। पांच बार अंतरिक्ष की यात्रा करने वाले और अन्तरिक्ष में १७०० घंटे बिताने वाले कप्तान एलन बीन ने अगले ४-५ सालों के अन्दर-अन्दर नियमित अन्तरिक्ष शटल सेवा की शुरूआत की भविष्यवाणी ही नहीं की है, बल्कि दिल्ली के पत्रकारों और साहित्यकारों को उस यात्रा में शामिल होने के लिए निमन्त्रण भी दिया है। अच्छा ही है, दिन-रात चन्द्रमुखी के मुखचन्द्र के वर्णन में उलझे रहने वाले कविगण भी चन्द्रमा के घरातल पर पहुंचकर प्राण-वायु-शून्य चन्द्र-घरातल जैसी ठोस और कुछ वस्तुतः यथार्थवादी कविताएं संसार को दे सकेंगे।

अब तक चन्द्रमा के सौंदर्य का कवियों ने इतना अधिक वर्णन किया है कि अब विज्ञान द्वारा उसकी असलियत का पर्दाफाश हो जाने से कविता पढ़ने का मन ही नहीं रह गया। फिर भी पुराने कवियों की जो कविताएं अब तक पढ़ चुके हैं, उन्हें भुला कैसे दें। अंग्रेजी के कवि जार्ज कोली का कहना है :

नाजो ग्रदा के साथ पदचाप से चारों ओर सौन्दर्य बिखेरती राज-रानी की तरह चन्द्रमा कैसे बादलों का पर्दा धीरे से हटाकर मध्यरात्रि के सिंहासन पर आसीन होने के लिए आ रहा है।

परन्तु आदिकवि वालिमिकि ने किसी एक उपमा से संतोष न करके जैसे उपमाओं का ढेर लगा दिया है :

हंसो यथा राजति पंजरस्थ सिंहो यथा राजति भन्दरस्थः।

वीरो यथा राजति दर्पित कुंजरस्थः चन्द्रोऽपि बन्धाज तथाम्बरस्थः॥

—जैसे पिंजरे में बैठा हंस, पर्वत-कन्दरा में बैठा बनराज सिंह और मस्त हाथी पर बैठा तरुण वीर शोभित होता है, वैसे ही आकाश में स्थित चन्द्रमा शोभायमान है।

पर कवि चन्द्रमा के केवल सौंदर्य का वर्णन करके ही नहीं रह गए, उसके एक और गुण की तरफ भी उनका ध्यान गए बिना नहीं रहा। शेक्सपियर की प्रेमिका अपने प्रेमी से कहती है :

चांद की कसम मत खाओ, क्योंकि चांद तो अस्थिर है, वह तो आकाश में भ्रमण करते-करते हर रोज कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष के हिसाब से बदलता रहता है। क्या तुम्हारा प्रेम भी वैसे ही परिवर्तनशील है?

आइन्स्टीन ने कभी सापेक्षवाद का सिद्धांत सरल भाषा में समझाते हुए कहा था—“किसी सुन्दरी से बातचीत कर रहे हों तो समय बीतता पता नहीं लगता, यों आपको रेलगाड़ी की प्रतीक्षा करनी पड़े तो आप बोर हो जाएंगे।” फ्रांसीसी लेखक जोसेफ जूवर्ट का कहना है :

ऊँची से ऊँची कर्तव्य की पुकार की अपेक्षा किसी सुन्दरी की कानां-फूसी की बात ज्यादा दूर से सुनी जा सकती है।

पर फांस के ही एक दूसरे विद्वान् और राजनीतिक तत्त्ववेत्ता बैरन दे मौते का कहना है :

जब सौंदर्य देहरी पर कदम रखता है तो विश्वास खिड़की से बाहर निकल जाता है।

सौंदर्य की शक्ति से इंकार नहीं किया जा सकता। संसार के इतिहास में 'भीषण युद्धों' के मूल में अधिकतर सौंदर्य ही कारण रहा है। सुन्दरियों के नाक-नक्श किस तरह संसार के इतिहास को प्रभावित करते हैं, इसका अन्दाज फांस के ही एक गणितज्ञ वैज्ञानिक—ब्लेज पास्कल—ने अपनी इस उकित में लगाया है :

यदि किलयोपेट्रा की नाक कुछ छोटी होती तो संसार का सारा चेहरा बदला हुआ होता।

बहरहाल, बात शुरू हुई थी आदमी के असन्तोष से। यह असन्तोष ही जिंदगी की निशानी भी है। तभी तो सर मुहम्मद इकबाल ने कहा था :

फूँक डाला है भेरी आत्मा-नवाई ने मझे।

और भेरी जिंदगानी का यही सामां भी है।

जिस असन्तोष की ज्वाला ने आदमी को फूँक डालने में कसर नहीं रखी, उसी असन्तोष की ज्वाला ने आदमी को अंतरिक्ष-यात्रा से लेकर चन्द्रमा के घरातल तक भी पहुँचा दिया है। अन्तरिक्ष-यात्रा के लिए उत्सुक आज का मानव शायद मन ही मन फारसी के उस अज्ञात कवि के शब्दों में कह रहा होगा :

तायरे जेरे दाम के नाले तो सुन चुके हो तुम।

यह भी सुनो कि नालाए तायरे बाम और है॥

—पिंजरे में बंद पक्षी का क्रङ्दन तो तुम सुन चुके हो, अनन्त आकाश में उड़ने वाले आजाद पंछी की आवाज और सुनो।

संसार के दुःख-दैन्य, अभाव-अभियोग और आक्रोश-असन्तोष से पीड़ित मानव की चिरकाल से पुकार थी :

कभी तो आओ हम खाक-नशीनों के पास भी।

कब तक रहोगे चांद सितारों से दूर-दूर॥

अब चांद वरती के इन मानवीय सितारों से दूर नहीं रहेगा।

## कलियुग का सोमरस

जब समुद्र-मन्थन करने के परिणामस्वरूप हलाहल विष निकला तो सुर और असुर दोनों उसे छोड़कर परे हट गए। संसार के समस्त प्राणियों की और अग-जग के कल्याण की अहर्निश चिन्ता करने वाले भोलानाथ को सृष्टि को विघ्वंस से बचाने के लिए वह हलाहल स्वयं पीना पड़ा। इससे वे भोले ही नीलकण्ठ बन गए, पर संसार की रक्षा हो गई।

समुद्र-मन्थन से जब अमृत निकला तो उसका पान करने के लिए देवों और दानवों में संवर्ष छिड़ गया। अन्त में देवगण विजयी हुए और वे अमृतकुम्भ लेकर स्वर्गलोक में चले गए। वहाँ वे अमृत पी-पीकर अमर हो गए।

रह गया मर्त्यलोक का मरण-घर्मा मानव। जिस हलाहल को पीने की हिम्मत देवों और दानवों में से कोई भी न कर सका, उसे मानव ही क्यों पीता। अमृत उसके भाग्य में नहीं, उसे तो देवता उड़ा ले गए। तब ऋषियों को मानव की इस निरीह अवस्था पर दया आई और उन्होंने उसके लिए सोमलता की खोज करके सोमरस तैयार किया।

सोम की महिमा का बड़ा मनोरंजक वर्णन वेदों में आया है। ऋषि लोग स्वयं भी सोमरस का पान करते थे और मस्ती में भरकर मंत्रों द्वारा सोम की स्तुति भी करते थे। सोम की प्रशंसा करते-करते ऋषियों की वाणी थकती नहीं थी। कुछ मंत्र देखिए :

स्वादिष्ठ्या भदिष्ठ्या पवस्त्व सोमधारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्पान्वसः । तरत्स मन्दी धावति ॥

उप नो हरिभिः सुतम् पाहि मदानां पते । उपनो हरिभिः सुतम् ॥

हन्ताहं पृथिवीभिमां निदधानीह वेह वा । कुवित् सोमस्यापामिति ॥

—हे सोम ! जब तेरी हरी-हरी पत्तियों को पीसकर रस निकाला जाता है और उससे स्वादिष्ठ और आह्वादकारी रस की धार निकलती है, तो उसे पान करके ऐसा लगता है जैसे मानव तैरता हुआ-सा दौड़ा चला जा रहा है—दौड़ा चला जा रहा है। ०००मैंने सोमरस खूब छककर पी लिया है। अब मेरी भुजाओं में इतना बल आ गया है कि इस पृथ्वी को मैं उठाकर इधर फेंक दूँ या उधर फेंक दूँ।

सोम की इस मस्ती का वर्णन ठीक वैसा ही है जैसा उर्दू के शायर शराब की मस्ती के बारे में किया करते हैं :

जर्रे से आफताब होते हैं जब हम मस्त-ए शराब होते हैं ।

इस वर्णन को देखकर कुछ लोगों ने कहा कि यह सोम और कुछ नहीं, भांग है। शायद भांग के रसिया ब्रजवासी इस निष्कर्ष पर प्रसन्न हों, क्योंकि उनके मत में जितने विटामिन और प्रोटीन इस भांग-गुटिका में हैं, उतने और किसी चीज में नहीं। पर भांग की असलियत क्या है, वह भी काबिले गौर है।

जंगल में गधा घास चर रहा था। सूखी-सूखी घास पर वह मुँह मार रहा था, पर भांग के हरे-भरे लहलहाते पौधे की ओर फूटी आंखों से देखना भी उसे पसन्द नहीं। भंग-भवानी इस अपमान को बर्दाश्त नहीं कर सकी। उसने गधे से मुखातिब होकर कहा :

शंकरो मामेव गृह्णाति त्वं न गृह्णासि गर्दभ ।

—भगवान शंकर तो मेरा इतने मान-सम्मानपूर्वक सेवन करते हैं, पर तू मेरी ओर आंख भी नहीं उठाता। आखिर क्यों?

इस पर रासभराज ने बड़े धीर-गम्भीर स्वर में कहा :

नरो गर्दभतां याति गर्दभस्य तु का गतिः ॥

—हे भंग-भवानी! आपका सेवन करने से आदमी गधा बन जाता है। मैं तो पहले से ही गधा हूँ—मेरी ओर क्या गति होगी!

इस प्रकार जब यह स्पष्ट हो गया कि सोम का अभिप्राय भंग नहीं हो सकता, तब पाश्चात्य विद्वान् और उनके उच्छिष्टभोजी भारतीय विद्वान् आगे आए और उन्होंने स्थापना की कि सोमरस का अभिप्राय है—शराब और ऋषि लोग मद्यपान के ही प्रेमी थे। पर नीतिकारों ने कहा है :

चित्ते भ्रांतिर्जायिते मद्यपानाद् भ्रान्ते चित्ते पापचर्यासुपैति ।

पापं कृत्वा दुर्गंतं यान्ति मूढा तस्मान्मद्यं नैव पेयं न पेयम् ॥

—शराब पीने से चित्त भ्रान्त हो जाता है। और भ्रान्त चित्त हो जाने पर मूढ़ आदमी पाप करते हैं और फिर पाप करके दुर्गति को प्राप्त होते हैं, इसलिए मद्यपान नहीं करना चाहिए, नहीं करना चाहिए।

किसी उर्दू के शायर ने लिखा है :

ये दौरे-जाम ऐ शराब नोशो फलक की गर्दिश से कम नहीं ।

चला है ये दौर जिस जगह, उस जर्मीं का तख्ता उलट गया है ॥

इसलिए सोमरस का मतलब शराब नहीं हो सकता।

तब?

तब क्या! सोमरस का मतलब है चाय। सोमरस का जो वर्णन वेद में आया है, वह सब चाय पर घटता है। सोमलता भुंजवान पर्वत पर होती थी। चाय भी दार्जिलिंग और नीलगिरि की पहाड़ियों पर होती है। सोमरस स्वादिष्ट और मदिष्ट था तो चाय भी स्वादिष्ट और मदिष्ट है। उसकी हरी पत्तियां होती थीं, तो इसकी भी हरी पत्तियां होती हैं। सोमरस पीकर आदमी हलकापन अनुभव करता था, तो चाय भी आदमी को चुस्त और हलका कर देती है।

हां, एक फर्क है—सोमरस पीसकर निकाला जाता था, पर चाय उबालकर

बनाई जाती है। ऋषियों से लेकर कलियुगी मानव तक आते-आते इस दिव्य पेय में इतना अन्तर तो आना ही चाहिए था! लोग आयुर्वेदिक और हकीमी नुस्खों से घबराते हैं क्योंकि उनका काढ़ा बनाकर पीने की सलाह दी जाती है। पर चाय का काढ़ा बड़े शौक से पीते हैं। बादू से लेकर बॉस तक और मजदूर से लेकर मालिक तक, आज सब इस प्रकार चाय के दीवाने हैं कि इसे सही अर्थों में राष्ट्रीय पेय कहा जा सकता है।

एक मित्र ने तो वेद में भी चाय का उल्लेख बताते हुए कहा :

**ऋतं च सत्यं चा।**

तो दूसरे मित्र ने गीता के श्लोक का उद्धरण देकर वहां भी चाय सिद्ध की :

**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः।**

तो तीसरे मित्र ने बताया कि भण्डारकर इंस्टीट्यूट(पूणे) में अठारहवीं शताब्दी का एक हस्तलिखित ग्रन्थ है 'भोजन कुतूहल'। उसमें गंगाजल के लिए कहा गया है :-

**शीतं स्वादु स्वच्छमत्पत्तं रुच्यं पथ्यं पाक्यं पाचनं पापहारि।**

**तृष्णामोहध्वंसनं दीपनं च प्रज्ञां घत्ते वारि भागीरथीयम्॥**

—वह शीत, श्वेत, स्वादु, अत्यंत रुचिकारक, पथ्य, भोजन पकाने योग्य, पाचक, प्यास बुझाने वाला, क्षुधा और बुद्धि का वर्धक और पाप का हरण करने वाला है। जब से 'कॉल्ड टी' बनने लगी है, तब से गंगाजल के ये सारे लक्षण उसमें मिलने लगे हैं।

आजकल बिना विज्ञान के समर्थन के अन्य सब प्रमाण फीके रह जाते हैं। तो लीजिए, अब हाल में ही भारतीय और रूसी वैज्ञानिकों ने खोज की है कि चाय में विद्यमान कैफीन नामक तत्त्व जहां गैस सम्बन्धी विकृतियों को दूर करता है, और सानसिक चुस्ती लाता है, वहां गठिया और दन्तरोगों में भी लाभदायक है। चाय में विटामिन बी, रिवोफ्लेबिन, फोलिक अम्ल और नींबू या सन्तरे से चार गुणा अधिक विटामिन सी है। उकेन में जो परीक्षण हो रहे हैं उनके अनुसार भविष्य में चाय से रक्तक्षय (ल्यूकीमिया) के भी उपचार की सम्भावना है।

आशा है, भविष्य में यह राष्ट्रीय पेय आपको अधिक स्वादिष्ट लगेगा और अधिक स्वास्थ्यकारक भी। अपने तईं तो शाहिद अर्जीज 'रविश' सिद्धीकी के शब्दों में यही कह सकते हैं :

**हम तक अब आए न आए दौरे-पैमाना 'रविश'।**

**मुतमइन बैठे हैं जरे-साया-ए-मयखाना हम।**

—अब हम तक चाय के प्याले की बारी आवे या न आवे, हम तो (चाय-खाने की) मधुशाला की छाया तले निश्चिन्त बैठे हैं।

## तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे

गंगा की सहायक तमसा नदी के तटवर्ती वन में वाल्मीकि मुनि अपने शिष्य के साथ जा रहे थे। पंकहीन घाट और नदी का निर्मल जल देखकर मुनि के मन में आया कि यहां स्नान किया जाए।

घाट के किनारे एक प्रणयमग्न क्रौंच युगल सृष्टिचक्र में तल्लीन। अक्समात् एक व्याघ आया और उसने अपने तीक्ष्ण बाण से क्रौंच को घराशायी कर दिया। क्रौंची विलाप करती हुई उसके ऊपर गिरकर तड़फड़ाने लगी। संवेदनशील मुनि के हृदय को क्रौंची का चीतकार चीरता चला गया। हठात् मुख से निकल पड़ा :

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमग्नः शाश्वतीः समाः ।

यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः कामक्षोहितम् ॥

—अरे निषाद ! काम-मोहित क्रौंच-युगल में से एक को मारकर तूने जोड़ी बिगाड़ दी, सृष्टिक्रम में व्यवधान उपस्थित कर दिया, लानत है तुम पर ! तुम्हें जन्म-जन्मान्तर तक अब कभी यश नहीं मिलेगा—तू सदा कलंक का भाजन बना रहेगा।

स्वयं मुनि चौंके। शोक से विह्वल होकर, सबकी स्वस्ति चाहने वाले मुनि के मुख से यह अस्वस्ति और अशुभ वचन क्यों ?

स्नान के बाद मुनि कुटी में लौट आए। पर क्रौंच-पत्नी की दारुण व्यथा से परितप्त मन को चैन नहीं। वही श्लोक बार-बार मन के गवाक्ष पर आकर बैठ जाता है। तभी ब्रह्मा कुटी पर पधारे। बोले—‘मुनिवर ! मेरी ही प्रेरणा से तुम्हारे मुख से सरस्वती का आविर्भाव हुआ है। तुमने आज प्रातः नारद के मुख से जो पुण्य कथा सुनी है, उसीको श्लोकबद्ध करो।

यह त्रेता युग की घटना है। ब्रह्मा के कथनानुसार मुनि वाल्मीकि ने जो श्लोकबद्ध कथा लिखी, वही वाल्मीकि रामायण के नाम से प्रसिद्ध हुई। वाल्मीकि आदिकवि और रामायण आदिकाव्य। ‘आह से उपजा होगा गान’ और ‘शोकः श्लोकत्वमागतः का यह अद्भुत उदाहरण है।

करुणा में वह कौनसा रसायन है जो मानसिक शक्तियों को इस प्रकार एकाग्र कर छन्दोबद्ध रूप में प्रवाहित कर देता है। करुणा की इस महनीयता को वाल्मीकि ने काव्य का ऐसा रससिक्त चोला पहनाया कि सदियां गुजर जाने पर भी उस रस में रक्ती भर अन्तर नहीं आया। महाकवि भवभूति ने ‘एको रसः करुण एव’ कहकर इसकी मार्भिकता को पहचाना था। तभी तो कहा था :

दुःख संवेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम् ।

—राम की जिन्दगी दुःख सहने के लिए ही बनी है। मर्यादा पुरुषोत्तम होकर भी राम के जीवन में सुख के कौनसे क्षण आए? तभी तो राम-वनवास और सीता-परित्याग की घटनाएं इतनी हृदयद्रावक हैं कि भवभूति के ही शब्दों में :

अथि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥

—उसे सुनकर पत्थर रो पड़ते हैं और वज्र का हृदय भी चूर-चूर हो जाता है।

राम की कथा के मिस से आदिकवि ने, सच पूछो तो, विश्व-वेदना की ही चिरत्तन और चिर-नवीन कथा कही है। क्रौंच और क्रौंची भी उसी विश्वव्यापी प्रकृति-वेदना के प्रतीक मात्र हैं। क्रौंच-युगल की तरह कहीं श्रण-युगल मिल रहे हैं और कहीं अलग हो रहे हैं। इस कथा में तभी इतनी पकड़ है और तभी उसके लिए यह भविष्यवाणी सार्थक होती है—

यावत् स्थास्यन्ति पिरयः सरितश्च महीतले ।

तावद् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥

—इस पृथ्वी पर जब तक पर्वत स्थित हैं और सरिताएं प्रवहमान हैं, तब तक रामायण की कथा देश-देश में प्रचार पाती रहेगी।

इस भविष्यवाणी की सार्थकता का ही प्रमाण है कि तमसा तट के कवि की यह वाणी नदी-पर्वतों, समुद्रों को लांघकर न जाने कहाँ-कहाँ पहुंची। अयोध्या के राजकुमार के जीवन की घटना भले ही एकदेशीय हो, पर उस घटना के अन्दर छिपा मर्म सर्वदेशीय है। तभी तो त्रेता की उस घटना की गूंज हिन्दूचीन तक पहुंची, जिसका प्रमाण है सातवीं शताब्दी का वह शिलालेख जो राजा प्रकाशधर्म (६५७-६७८ ई०) के समय बने वाल्मीकि-मंदिर में वाल्मीकि की मूर्ति के नीचे लगा है और जिसमें यह श्लोक श्रृंकित है :

स्य शोकात् समुत्पन्नं श्लोकं ब्रह्माभिपूजितम् ।

विष्णोः पुंसः पुराणस्य मानुषस्यात्मरूपिणः ॥

इससे स्पष्ट है कि वाल्मीकि के शोक से श्लोक की उत्पत्ति की तथा राम के विष्णु के अवतार होने की घटना सातवीं सदी में हिन्दूचीन में प्रचलित हो चुकी थी।

विभिन्न देशों के राजनीतिक विवादों में वाल्मीकि रामायण किस प्रकार निर्णयिक रही है, इसका भी एक ऐतिहासिक उदाहरण उपलब्ध है, जो इसी युग का है।

डच लोग जब इण्डोनेशिया को छोड़कर जाने लगे तब वेस्ट इरियन (न्यूगिनी) के सम्बन्ध में विवाद छिड़ गया। डचों का कहना था कि उसे इण्डोनेशिया का भाग नहीं माना जा सकता, जब तक इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध न हो। अंत में वाल्मीकि रामायण के किंजिधा काण्ड का निम्न श्लोक प्रमाण-स्वरूप उपस्थित किया गया :

यत्त्वन्तो यवद्वीपं सप्त राज्योपशेभितम् ।

सुवर्गं रूप्यकं द्वीपं, यवद्वीपमतिकम्य, शिशिरो नाम पर्वतः ॥

## ३६ □ फिर इस अन्दाज से बहार आई

जब सीता की सोज के लिए सुग्रीव ने वानरों को चारों दिशाओं में जाने का आदेश दिया, तो पूर्व दिशा की ओर जाने वाली टोली को समझाया कि भगवती सीता को वे कहाँ-कहाँ खोजें। सुग्रीव ने कहा—“सात राज्यों से शोभित जावा (यवद्वीप) में जाना, फिर जावा को पार कर सुमात्रा (स्वर्णद्वीप) जाना। सुमात्रा के बाद एक शिशिर नामक पर्वत है...” यह न्यूगिनी वही स्थान है जहाँ उक्त पर्वत विद्यमान है।

वाल्मीकि रामायण के इस प्रमाण को साम्राज्यवादी डचों ने बिना ननुन्न स्वीकार किया और न्यूगिनी इण्डोनेशिया को मिल गया।

ब्रह्मा ने वाल्मीकि मुनि को राम की कथा लिखने का परामर्श देते हुए कहा था :

न ते वाग्नृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति ।

—मुनिवर ! तुम जो लिखोगे, वही सत्य हो जाएगा, तुम्हारी वाणी मिथ्या नहीं हो सकती ।

ब्रह्मा का यह आशीर्वाद अब तक सही रहा। पर इधर कुछ समय से उस आशीर्वाद को मिथ्या सिद्ध करने की बुद्धिजीवियों में होड़ लगी हुई है। रामायण और महाभारत के पीछे लोग अपने-अपने तर्क-कुठार लेकर पढ़े हुए हैं। जब वेदान्तियों ने ‘ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या’—कहकर सारे जगत् को ही मिथ्या सिद्ध कर दिया, तब राम और रामायण को मिथ्या कहने वालों पर क्रोध क्यों करें। जिन बौद्धों ने ईश्वर और वेद तक का खंडन किया, उन्होंने भी राम और रामायण को मिथ्या नहीं कहा। पर ये आधुनिक ‘बौद्ध’ (बुद्धिजीवी) महात्मा बुद्ध से भी आगे बढ़ गए।

योगिराज अरविन्द घोष ने लिखा है :

भारत के सांस्कृतिक मानस को ढालने में वाल्मीकि की कृति ने एक अपरिमेय शक्ति-साधन का काम किया है। हमारे राष्ट्रीय चरित्र के सर्वोत्तम और मधुरतम तत्त्वों का गठन इसीने किया है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है—यदि रामायण की घटना सत्य है तो राम जैसा चरितनायक आज तक धरती पर नहीं आया; और यदि कथा काल्पनिक है तो वाल्मीकि जैसा प्रतिभाशाली महाकवि आज तक नहीं जन्मा।

बहरहाल, हम विवाद में क्यों पड़े। हम तो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में यही कहकर बात को विराम दें :

राम तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?

विश्व में रसे हुए सभी कहीं हो क्या ?

तब मैं निरीश्वर हूँ ईश्वर क्षमा करे ।

तुम न रमो तो मन तुम्हें रमा करे ॥

## रख दे कोई जरा-सी खाके-वतन कफन में

८ महापंडित राहुल सांकृत्यायन जब रूस में प्राध्यापक थे, तब एक दिन शाम को बाग में घूमने गए। वे धीरे-धीरे चहलकदमी कर रहे थे और अपने विचारों में खोए हुए थे कि सामने से एक महिला दौड़ी-दौड़ी आई और 'रोमा ! रोमा !' कहते हुए उनसे लिपट गई। महापंडित ठगे-से खड़े रह गए। एक-दो क्षण बाद जब स्थिति को समझ पाए तब कहा—'नहीं, मैं रोमा नहीं।' पर महिला कहाँ मानने वाली थी। बोली—'तुम्हार रंग, चेहरे की बनावट, काली आँखें और काले बाल—ये सब कह रहे हैं कि तुम रोमा हो। तुममें और हममें क्या फर्क है !'

उसके बाद राहुल सांकृत्यायन ने जिप्सियों और उनकी भाषा—रोमनी—के बारे में जो अध्ययन किया, उससे वे इस परिणाम पर पहुंचे कि ये लोग मूलतः भारतीय हैं और इनकी भाषा भी भारोपीय परिवार की संस्कृत-मूल की भाषा है। तब उस महिला द्वारा रोमा समझे जाने पर उन्हें खेद नहीं हुआ।

जिप्सी न केवल पश्चिमी एशिया में, बल्कि यूरोप के सभी देशों में और अमेरिका तक में विखरे पड़े हैं। नाचना, गाना, नजूमी, किस्सागोई, नटबाजी, कलाबाजी, तरह-तरह के खिलौने और अन्य छोटी-मोटी चीजें बनाना तथा घोड़े बेचना इनका मुख्य व्यवसाय रहा है। 'पग धरती, सिर आसमान'—इनकी यायावरी का मुख्य लक्षण रहा है। अब इनमें से अधिकांश लोग लगातार घूमते-फिरते रहने की परम्परा को छोड़कर विभिन्न नगरों के स्थायी निवासी बन गए हैं। रूमानियत से भरी जिन्दगी बिताने वाले ये प्रकृति-पुत्र कभी यूरोप के युवकों के इतने आकर्षण के केन्द्र रहे हैं कि अमीरों के साहबजादे और राजकुमार तक समस्त ऐश्वर्य को लात मारकर इनमें आ मिलते थे और देश-विदेश की सैर करते थे। किसी जिप्सी युवती का अपरूप सौन्दर्य भी दिलफौक युवकों को अपनी और खींच लेता था। फांस के विश्वविव्यात लेखकों ने इस प्रकार के प्रणय को अपने उपन्यासों की कथावस्तु भी बनाया है।

'जिप्सी' शब्द को ईंजिप्ट से निकला हुआ माना गया और 'रोमनी' को रोम से। इसलिए यूरोप के इन घुमन्तुओं को कभी मिस्रवासी और कभी इटलीवासी समझा गया था। पर अब उनकी भाषा और उनके रीतिरिवाजों के अध्ययन से यह तथ्य सर्वस्वीकृत हो गया है कि ये लोग भारत की सन्तान हैं।

सन् १८७४ में एक रूसी राजकुमार हंगरी देश के एक रईस के साथ भारत आया था। मध्य प्रदेश के बनजारों से बात करने में और उनके गीतों को समझने में

उन्हें कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि ये बनजारे 'जिगरी' भाषा का प्रयोग करते थे जो रोमनी से मिलती-जुलती थी।

रोमनी का एक वाक्य है—'जा दीख, कौन चलवेला हो बुदार'। यह इस हिन्दी वाक्य का एकदम रूपान्तर लगता है—'जा देख, कौन चला है द्वार को'। रोमनी में गिनती इस प्रकार है—एक, दुइ, त्रिन्, स्तार, पंच, सोप, एफ्ट, छोषटो, एनियां, दश। पानी, काल, छुरी, रानी, नाक, बाल आदि शब्द ज्यों के त्यों इन्हीं अर्थों में रोमनी में प्रचलित हैं। हस्त को वस्त, दुर्घ को दुह, कीट को कीड़ी, बिडाल को बिलारी वे आज भी कहते हैं। विद्वानों के अनुसार रोमनी भाषा में इस समय यूनानी, स्लाव, फारसी तथा जर्मन भाषाओं के शब्द भी मिले हुए हैं, पर इससे भी उसके संस्कृतभूलक होने में अन्तर नहीं पड़ा।

बनजारा कभी एक स्थान पर नहीं रहता। उसकी इस वृत्ति को लक्ष्य करके नजीर अकबराबादी ने लिखा था :

टुक हिर्सों हवा को छोड़ मियां मत देस-विदेस फिरे भारा।

कज्जाक अजल को लूटे हैं, दिन रात बजाकर नक्कारा॥

सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बनजारा॥

पर जब तक नर-तन का चोला साथ जुड़ा हुआ है, तब तक हिर्सों-हवा और लोभ-मोह कहां छूटते हैं। आध्यात्मिकता की भाषा में बात करनी हो तो कह सकते हैं कि जीव परमात्मा से विछुड़कर दर-दर भटकता है कि मेरा प्रियतम मुझे फिर मिल जाए। यह भटकन ही मानव की नियति है—जीवन-भर भटकना। जब यह भटकन मानसिक धरातल पर होती है तो साहित्य और कला की सृष्टि होती है। आखिर समस्त साहित्य और कला क्या है—उस अज्ञात की खोज में भटकने की अविराम परम्परा ही तो। हरेक बुद्धिजीवी अन्दर से बनजारा होता है। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि वाल्ट हिटमैन ने लिखा है :

तनावमुक्त हृदय लेकर मैं खुली सड़क पर पैदल निकल आया हूँ।

मेरे सामने स्वस्थ और बन्धन रहित संसार पड़ा है,

सुदूर पथ मेरे सामने बिछा है—

मैं चाहे जिवर जाऊं अब मुझे सुन्दर भविष्य नहीं चाहिए,

मैं स्वयं अपना सौभाग्य हूँ,

घर और पुस्तकालय के अन्दर बैठा-बैठा मैं उकता गया हूँ,

अब मैं बिसूरंगा नहीं, टालूंगा नहीं

मुझे कुछ नहीं चाहिए,

पूर्णतया सन्तुष्ट और सशक्त मैं निर्द्वन्द्व खुली सड़क पर चलूंगा।

ये रोमनी जिप्सी पता नहीं, इतिहास के किस काल में, किन परिस्थितियों में, इस देश की सीमाओं को लांघकर विदेश में भटकते रहे। देशशून्य नागरिक कह-लाए। पाश्चात्य सभ्यता के ठेकेदारों से लांछना सहते रहे। हिटलर जैसे तानाशाहों

मैं इनको विशुद्ध आर्य-रक्त के होते हुए भी सताया। यूरोप के अनेक देशों में इनके विशुद्ध कानून बने। आज भी ब्रिटेन में इन्हें महानगर की बस्ती के किसी मकान या मुख्य सड़क के ३०० गज के अन्दर अपना तम्बू लगाने या वहाँ से पानी लेने का अधिकार नहीं है। फिर भी ये प्रकृति-पुत्र अपनी मातृभूमि को नहीं भूले। जिस भारतभूमि के लिए विष्णु पुराण में लिखा है:

**गायन्ति देवाः किल गीतकानि घण्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।**

**स्वर्गार्पवर्गस्य च हेतुभूते भव रितं भूयः पुरुषाः सूरत्वात् ॥**

—देवता-गण गीत गाते हैं कि भारतभूमि में जिन्होंने जन्म ग्रहण किया है, वे घण्य हैं, क्योंकि वे स्वर्ग और अपवर्ग दोनों के अधिकारी हैं जबकि देवता केवल स्वर्ग के अधिकारी हैं। इसका अर्थ यही तो है कि भारतवासी देवताओं से भी बढ़ कर हैं।

वे रोमनी सचमुच भारत को नहीं भूले और पिछले दिनों में जब चण्डीगढ़ में उनका अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ, तो अद्वलहमीद ‘अदम’ का यह शेर याद आए बिना नहीं रहा :

साकी मेरे खलूस की शिद्दत को देखना ।

फिर आ गया हूँ गर्दिशे दौरां को टाल कर ॥

—अरे साकी ! तू मेरे शुद्ध हृदय की सचाई को देख कि मैं दुनिया के चक्करों को टालकर फिर तेरे पास आ गया हूँ ।

अपने पूर्वजों की जन्मभूमि के दर्शन करके इन रोमाओं के हृदय में कैसा उद्घेलन उठा होगा, वे कितने भाव-विभोर हुए होंगे, यह इसी बात से जाना जा सकता है कि भारत से ब्राप्ति जाते समय उन्होंने इस देश की मिट्टी को अपने मस्तक पर लगाया और कुछ मिट्टी अपने साथ ले गए—जिसे वे अपने बच्चों और पारिवारिक जनों को भारत की सौगात के रूप में भेंट करेंगे। मिट्टी ? हां मिट्टी । यह वही मिट्टी है, जिसके लिए अमर शहीद रामप्रसाद विस्मिल के अभिन्न हृदय साथी और प्रसिद्ध कान्तिकारी अशकाकुला खां ने कहा था :

कुछ आरजू नहीं है बस आरजू है तो यह है ।

रख दे कोई ज़रा-सी खाके-वत्तन कफन में ॥

यह भी कैसी बिड़म्बना है कि अपने पूर्वजों की जिस पुण्यभूमि के दर्शन के लिए ये रोमा इतने लालायित थे, उसी पुण्यभूमि को छोड़कर अब विदेशों में घक्के खाने के लिए भारत की प्रहिता निरन्तर पलायन कर रही है।

## बाबुल का मीनार

बाइबिल के उत्पत्ति-प्रकरण (जेनसिस) के अनुसार एक समय ऐसा था जब सारे संसार में एक ही भाषा थी और एक ही बोली थी ।

उसी आदिम युग की बात है । मनुष्य जाति में स्वर्ग जाने की लालसा पैदा हुई । सोचते-सोचते मनुष्य का खुराफाती दिमाग इस नतीजे पर पहुंचा कि एक इतना ऊँचा मीनार बनाया जाए कि वह आसमान को छूने लगे । जब मीनार चौथे आसमान तक पहुंच जाए तब परमात्मा को वहाँ से निकालकर स्वर्ग पर कब्जा कर लिया जाए ।

योग्या पर अपल शुरू हो गया । धीरे-धीरे मीनार ऊँचा उठने लगा । सुदा को चिन्ता हुई । एक रात चुपके से स्वर्ग से उतरकर सुदा ने मीनार बनाने वाले सब राज और मजदूरों पर जादू की छड़ी छुमा दी । परिणाम यह हुआ कि सबकी बोली बदल गई । अगले दिन सवेरे जब सब सोकर उठे, तो कोई किसीकी बोली न समझे । जब कोई किसीकी बात ही न समझे तो मीनार का काम ठप्प होना ही था ।

तभी से परमात्मा का स्वर्ग के राज्य पर एकाधिपत्य है । मनुष्य जाति आज भी उससे वंचित है ।

बाबुल (बेबिलोनिया) के मीनार की यह कहानी भी बाइबिल के उसी उत्पत्ति-प्रकरण की है । इस बोध कथा में इस सत्य का प्रतिपादन किया गया है कि भाषा-भेद ही मनुष्य जाति की एकता में सबसे बड़ी बाधा है । मनुष्य लौटकर उस आदिम युग में तो नहीं जा सकता, जब सब मनुष्यों की एक ही भाषा और एक ही बोली थी । अब तो एक-एक देश में ही अनेक भाषाएं दृष्टिगोचर होती हैं । इस भाषा-वैविध्य का अपने देश—भारत—से बढ़कर उदाहरण और कहाँ मिलेगा । अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में जब कहा गया था :

नाना धर्माणं बहुधा विवाचसम् ।

—अनेक धर्मों वाले और अनेक बोलियों वाले । तब उसमें स्पष्टतः भारत भूमि का भौगोलिक और ऐतिहासिक वैशिष्ट्य व्यनित होता था । छान्दोग्य उपनिषद् का कहना है :

पुरुषस्य वाग् रसः ।

—मनुष्य का रस या सार उसकी वाणी है । और नीतिकार कहते हैं :

अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्व नारी च ।

प्राप्येभाः पुरुषविशेषं भवन्त्ययोग्या योग्यादच ॥

—घोड़ा, हथियार, धर्मग्रन्थ, वाद्य यन्त्र, वाणी और नर तथा नारी—ये

सब योग्य पुरुष को पाकर योग्य बन जाते हैं और अयोग्य पुरुष को पाकर अयोग्य बन जाते हैं।

मानव-जाति के विकास का भाषा से बढ़कर और साधन कौनसा है? यही वह शक्ति है जो केवल वर्तमान व्यक्तियों तथा जातियों ही को नहीं, अपितु एक पीढ़ी को दूसरी पीढ़ियों से, एक शताब्दी को दूसरी शताब्दियों से, एक युग को दूसरे युगों से—और एक सर्ग को दूसरे सर्गों से मिला रही है।

टेलीफोन, ग्रामोफोन और आकाशवाणी आदि सभी आविष्कार इस वाणी के ही तो वाहक हैं। लेखन, मुद्रण तथा पठन-पाठन तो विना भाषा के सम्मत ही नहीं। यदि भाषा न होती तो आज मनुष्य और पशु में कोई अन्तर भी न होता तभी तो महाकवि भर्तृहरि ने कहा है :

साहित्यसंगीतकलाविहीनः, साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः ।

—साहित्य, सगीत और कला से रहित मनुष्य तो बिना पूँछ और सींग का जानवर है। वाणी ही मनुष्य का सर्वोत्तम आभूषण है।

वह वाणी कैसी हो, उसका कुछ आभास गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण के चित्रकूट प्रसंग में भरत की वाणी के संबंध में विदेहराज जनक की इस उक्ति से दिया है :

सुगम अगम मृदुमंजु कठोरे । अरथु अमित अति आखर थोरे ।

विमल विवेक वरम नयसाली । भरत-भारती मंजु मराली ॥

परन्तु भाषा के प्रश्न पर हुई मारकाट के उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। कमाल अतातुर्क ने तुर्की भाषा में से अरबी के शब्द चुन-चुनकर निकलवा दिए थे। मुगलों के जमाने में उर्दू से हिन्दी और संस्कृत के शब्द निकाले गए और नासिख ने तो बड़े गर्व के साथ कहा था :

इस्पहां हमने किए हैं कुचहाए लखनऊ ।

—हमने लखनऊ के गली-कूचे भी इस्पहान बना दिए हैं। शायद नासिख की जानकारी के अनुसार स्पेन में अरबी-फारसी बोली न जाती हो! पर उन भाषा-विज्ञानियों का क्या करें, जो कहते हैं कि फारसी भी भारोपीय (इण्डो-यूरोपियन) परिवार की भाषा है!

शायद इन गड़े मुर्दों को उखाड़ने की नौबत न आती, अगर फ्रांसीसी सरकार ने यह नया कानून न बनांया होता कि अगले साल से कोई फ्रांसीसी किसी अंग्रेजी के शब्द का प्रयोग करेगा तो उसे हर बार १६० फांक का जुर्माना देना पड़ेगा। फ्रांसीसियों को अपनी भाषा पर गर्व है। हो भी क्यों न! जो ‘लिंगवा फेंका’ (मूल शब्दार्थ—फेंच भाषा) शब्द फेंच भाषा से हटकर अंग्रेजी में ‘राष्ट्रभाषा’ का पर्याय-वाची बन गया, वह इसी बात की तो निशानी है कि किसी जमाने में सारे यूरोप में फेंच भाषा को ही राष्ट्रभाषा के योग्य समझा जाता था। पर जमाना बदल गया। फ्री स्टाइल की कुश्ती में फेंच पिट गई। इसीलिए कुछ वर्ष पहले फ्रांस के राष्ट्रपति ने फेंच भाषा में से अंग्रेजी के शब्द निकालने का आदेश दिया था और इस काम के लिए

## ४४ □ फिर इस अन्दाज से बहार आई

एक आयोग भी गठित किया था ।

पर अंग्रेजी इस बहिष्कारबाद में विश्वास नहीं करती । यदि अंग्रेजी वाले प्रतिशोध की भावना से फेँच शब्दों का बहिष्कार प्रारम्भ कर दें, तो फेँच भाषा की ही हानि अधिक होगी, क्योंकि आज भी अंग्रेजी में फेँच शब्दों की भरमार है ।

शायद अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व का कारण यह हो कि नई दुनिया (अमरीका) ने उसे प्रश्न दिया है । पर जार्ज बनर्ड शा ने कभी लिखा था :

लीजिए, समान भाषा भी अलगाव से नहीं रोक सकी । पाकिस्तान के राष्ट्र-कवि हफीज जालंघरी ने, जिसे 'अब्बुल असर' (प्रभावशालियों की पिता) कहा जाता है, कभी हिन्दी-उर्दू के विवाद के बारे में कहा था :

'हफीज' अपनी बोली मुहब्त की बोली ।

न उर्दू, न हिन्दी, न हिन्दोस्तानी ॥

छोटी सी कहानी याद आ रही है । एक चींटी कहीं जा रही थी । रास्ते में दूसरी चींटी मिल गई । पहली चींटी ने कुशल-स्कैम पूछा । दूसरी चींटी ने कहा—'बहन ! और तो सब ठीक है, पर मुंह खारा बना रहता है ।' पहली चींटी बोली—'तुम नमक के पहाड़ पर रहती हो । फिर मुंह खारा क्यों नहीं होगा । मेरे साथ चलो । मैं मिसरी के पहाड़ पर रहती हूँ । वहां तुम्हारा मुंह मीठा हो जाएगा ।'

दूसरी चींटी पहली के साथ चल पड़ी । वहां पहुँचने पर भी उसका मुंह मीठा नहीं हुआ । उसने पहली चींटी से शिकायत करते हुए कहा—'मेरा मुंह तो अब भी खारा ही है ।' पहली चींटी बोली—'तुम मुंह में नमक की डली तो नहीं रख लाई हो !' 'वह तो है'—नमक के पहाड़ पर रहने वाली चींटी बोली । पहली चींटी ने कहा—'बहन ! नमक की डली को मुंह में से निकाले बिना मुंह मीठा कैसे होगा ?'

बाबुल के मीनार के समय से ही मनुष्य ने नमक की डली मुंह में रखी हुई है ।

## न जाने कितने घरौंदे बना के तोड़े हैं

संस्कृत के एक कवि ने सूर्यास्त का वर्णन करते हुए एक सुन्दर अन्योक्ति लिखी है :

रवेरस्तं तेजः प्रमुदयति खद्योतपटली  
मरालाली मूका कलकलपरोलूकपटली ।  
इदं कष्टं दृष्ट्वा चिरमसहभना कमलिनी  
अमद् भूं गव्याजात् कवलयति हलाहलमिव ।

—जब सूर्य का तेज अस्त होने लगा तो जुगनुओं की टोली खुशियां मनाने लगी, हंसों की जमात मूक हो गई और उलूक-मण्डली मुखर हो उठी। यह कष्टदायक स्थिति कमलिनी ने देखी तो उसे बर्दाश्त नहीं हुई और उसने चारों ओर मंडराते भाँरों का आतिथ्य करने के बहाने से मानो हलाहल पी लिया।

पर आदमी कमलिनी जितना कोमल और नाजुक नहीं है। आए दिन वह लांछित होता है, कदम-कदम पर अवमानना उसकी कदमबोसी करती है, पर वह इतना संगदिल है कि कभी खुदकशी नहीं करता। यों जहां तक हलाहल पीने की बात है, वह तो आदमी रोज ही पीता रहता है। फिर बिना हलाहल पीए शिवत्व भी तो नहीं मिलता।

आदमी की इसी खासियत को जोश मलीहाबादी ने, जो कभी ‘शायरे-इन्कलाब’ और ‘शायरे-ब्रादूवयां’ कहे जाते थे, अपने खास अन्दाज में यों बयान किया है :

फितने की नदी में नाव खेता हूँ मैं,  
घोखे की हवा में सांस लेता हूँ मैं।  
इतने कोई दुश्मन को भी देता नहीं जुल,  
जितने खुद को फरेब देता हूँ मैं॥

—मैं झगड़े-फसाद की नदी में ही अपनी नाव खेता हूँ और घोखे की हवा में ही सांस लेता हूँ। कोई अपने दुश्मन को भी इतने चकमे नहीं देता होगा, जितने मैं खुद अपने को दिया करता हूँ।

लखनऊ के निकट मलीहाबाद के एक जागीरदार घराने में जन्मे उसी शबीरहसन खां ‘जोश’ ने एक और रुबाई में अपनी पूरी शायरी का जैसे नैननक्ष ही सामने रख दिया है :

भुकता हूँ कभी रेखे-खां की जानिब  
उड़ता हूँ कभी कहकशां की जानिब ।  
मुझमें दो दिल हैं इक मायल-ब-जमां  
और एक का है रुख आस्मां की जानिब ।

—मैं कभी बहती हुई रेत की ओर भुकता हूँ, तो कभी आकाशगंगा की ओर उमड़ता हूँ। मुझमें दो दिल हैं, जिनमें एक का रुख घरती की ओर और दूसरे का रुख आसमान की ओर है।

आदमी की यही खासियत है। उसका दिल तो बहुत कुछ चाहता है—वह चाहता है कि मैं यह भी हो जाऊँ और वह भी हो जाऊँ। पर तकदीर उसका साथ दे, तब न! तकदीर न यह होने देती है, न वह होने देती है। इस बात को फारसी के शायर ने यों कहा है :

दिलम हरचन्द भी गोयद चुनीं बाशद, चुनां बाशद ।

बले तकदीर भी गोयद न ई बाशद, न आं बाशद ॥

कभी नीत्ये ने कहा था : 'परमात्मा मर गया है'। पर यह बात उतनी दुःखद नहीं है जितना कि आशा का मर जाना। क्योंकि आशा हो तो परमात्मा को पा लेना कठिन नहीं है। पर यदि आशा ही न हो तो परमात्मा के होने से भी कोई फर्क नहीं पड़ता। सच पूछो तो आशा की भावदशा ही आस्तिकता है और आशा ही समस्त जीवन-आरोहण का स्रोत है। किसी शायर ने कहा है :

किसे पता कि उम्मीदों की रेत से हमने,

न जाने कितने धरोंदे बना के तोड़े हैं ॥

वास्तविक जीवन में जो आशाएं पूरी नहीं होतीं, वे मनुष्य के अवचेतन मन में चली जाती हैं और स्वप्नों के माध्यम से पूरी होती हैं। फायड आदि आधुनिक मनोविज्ञानवेत्ता इसका समर्थन करते हैं।

पर हमारे शास्त्रकारों ने जागरण, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्यावस्था के नाम से जो भेद किए हैं उनके अनुसार सुषुप्ति (गहरी नींद) उस अवस्था का नाम है जिसमें स्वप्न भी नहीं आते, और तुर्यावस्था तो है ही समाधि—जिसमें जीव और ब्रह्म का सान्निध्य होता है।

आधुनिक वैज्ञानिक स्वप्नविहीन निद्रा की कल्पना नहीं करते और स्वप्नों को भी जीवन का आवश्यक अंग मानते हैं—यहां तक कि जिन रोगों का उपचार बाह्य उपायों से सम्भव नहीं, उनका उपचार स्वप्नों के माध्यम से करने की बात कही जाती है। जिन समस्याओं का समाधान जाग्रत अवस्था में नहीं सुझता, मन को और शरीर को पूर्ण विश्राम मिलने पर अनायास उनका समाधान ऐसे ढंग से हो जाता है कि आदमी स्वयं चकित रह जाता है।

यदि रात्रि-स्वप्न इतने उपयोगी हैं, तो दिवास्वप्न उपयोगी क्यों नहीं होंगे! हालांकि सब लोग दिवास्वप्न-सेवियों को अव्यावहारिक और खयालों की दुनिया में जीने वाला कहते हैं, पर मानसिक चिकित्सक और वैज्ञानिक इस प्रकार की बात सोच

भी नहीं सकते। और क्या समस्त साहित्यकार, चित्रकार, संगीतकार और कलाकार तथा आविष्कार-कर्ता इस बात के साक्षी नहीं हैं कि दिवारबन्ध की वेला में ही उन्हें नये विचार सूझे हैं। सर्वथा पीड़ित, पराजित, शोषित, पददलित और लांचित व्यक्ति जब किसी अलस दुपहरी में दिवास्वप्न लेता है और अपने-आपको विजय-श्री से मंडित, सर्वत्र प्रशंसित, चतुर्दिक् चर्चित और यशस्वी व्यक्ति पाता है तो उसके कितने सुख के क्षण होते हैं वे! कौन कह सकता है कि उसकी यह सपनों की दुनिया झूठी है! जब वेद का ऋषि कहता है :

अहमिन्द्रो न पराजिम्ये, इद्धनं न मृत्यवे अवतस्थे कदाचन ।

—मैं इन्द्र हूं, मैं कभी पराजित नहीं हो सकता और मुझे कभी मृत्यु नहीं आ सकती,—या वेद की ऋषिका कहती है :

अहं केतुरहं मूर्धा अहम् उपा विवाचनी ।

—मैं राष्ट्र की पताका हूं, मैं राष्ट्र का शीर्ष हूं, मैं ही प्रचण्ड बक्ता हूं— तो आधुनिक तथाकथित बुद्धिजीवी भले ही कहें कि ये ऋषियों और ऋषिकाओं के दिवास्वप्न के समय के उद्गार हैं, पर उनमें जीवन का एक महान् सत्य छिपा है।

अपने जनेऊ के समय रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ‘दिवा मा स्वाप्सी’—दिन में मत सोना—की प्रतिज्ञा ली थी और उसका निष्ठा के साथ वे पालन भी करते थे। बुढापे में जब एक बार वे बीमार पड़ गए तब महात्मा गांधी ने उनसे यह भिक्षा मांगी : ‘कृपया भोजन के पश्चात् आप दिन में थोड़ी देर के लिए विश्राम अवश्य करें। यह आपके स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।’ गुरुदेव ने कथंचित् इसे स्वीकार कर लिया।

इस घटना के बाद एक दिन दोपहर को आचार्य क्षितिमोहन सेन किसी प्रसंग में गुरुदेव से मिलने गए तो उन्होंने द्वार की फिरी में से देखा कि गुरुदेव लेटे हुए हैं। वे उल्टे पांव लौटने को हुए कि गुरुदेव ने आवाज दे ली। श्री सेन ने कहा—‘आप विश्राम कर रहे हैं, मैं फिर आ जाऊंगा।’ गुरुदेव ने कहा—‘नहीं, दोपहर को मैं सोता नहीं। मैं तो गांधीजी को भिक्षा दे रहा हूं।’

कौन जाने, ‘गांधी जी को भिक्षा’ देते समय भी कविता की कोई पंक्ति उस समय गुरुदेव के दिवास्वप्न में चक्कर लगा रही हो?

## प्रेम न बाड़ी ऊपजै....

कहते हैं कि ताजमहल को देखकर एक विदेशी महिला इतनी भावाभिभृत हो गई कि उसने अपने पति के सामने यह प्रस्ताव रख डाला कि यदि आप मेरी मृत्यु के बाद इतने ही भव्य कलात्मक भवन का निर्माण करने का वचन दें तो मैं इसी क्षण अपने प्राण त्याग सकती हूँ । सफेद संगमरमर की बेजान इमारत के लिए इतनी बड़ी कुर्बानी !

ज्ञान-विज्ञान के हिमायती पुरुष भला ऐसा कभी सोच सकते हैं ! लेकिन स्पष्टतः चन्द्रयात्रा के इस युग में भी ऐसी महिलाएं हैं जो अपने पतियों के दिलों में मुगल बादशाह शाहजहां के प्रेम की गहराई चाहती हैं । उक्त विदेशी महिला उनमें से ही एक थी ।

उर्दू के प्रसिद्ध शायर फैज अहमद 'फैज' जब इन कोमल भावनाओं से उद्देलित हुए तो कह उठे :

रात यूँ दिल में तेरी खोई हुई याद आई ।

जैसे बीरानों में चुपके से बहार आ जाए ॥

जैसे सहलाओ (जंगलों) में हौले से चले वादेनसी (हवा) ।

जैसे बीमार को बेवजह करार आ जाए ॥

लेकिन अगर आप यह समझें कि फैज साहब को हमेशा अपनी प्रेयसी की याद आने पर 'बेवजह करार' आ जाता था तो यह आपकी गलतफहमी है । फैज किसी और जगह कहते हैं :

लौट जाती है उधर को भी नजर क्या कीजे ?

मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग ॥

जब एक ही व्यक्ति के 'मूड़' के बारे में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, तो फिर अलग-अलग आदमियों के अलग-अलग मिजाज होना तो लाजिमी ही है ।

आप ताजमहल को महज बेजान इमारत समझें या प्रेम और सौन्दर्य की जीती-जागती प्रतिमा, वह तो आपकी भावना पर निर्भर है । लेकिन ऐसे भी शायर हो गए हैं जो काबे में और शराबखाने में कोई फर्क नहीं मानते । मशहूर शायर हाफिज इनमें से ही एक थे ।

रियाज ख़ैराबादी की खुदा के सामने पढ़ने चलने की एक अनोखी भंगिमा देखिए :

यह क्या मजाक फरिशतों को आज सूझा है ।

खुदा के सामने ले आए हैं पिला के मुझे ॥

आप शायद यह समझ बैठे होंगे कि उर्दू के इन महान् शायरों ने सर्वशक्ति-मान ईश्वर की अवमानना की है । यदि ऐसा है तो किर आप भ्रम में पड़ गए हैं । आबरू की इन पंक्तियों से आपका भ्रम टूट जाएगा :

पीता नहीं शराब कभी बे वजू किए ।

कालिब में मेरे रुह किसी पारसा की है ॥

—मैं बिना वजू किए कभी शराब नहीं पीता । मेरे शरीर में आत्मा ऐसे व्यक्ति की हैं जो शराब से परहेज करता है ।

वास्तव में ये रिन्द (भक्त) शायर अपने माशूक (ईश्वर) के वस्त (दर्शन) के लिए मदिरापान (भक्ति-उपासना) कर देसुध रहते हैं । तभी तो दाग कहते हैं :

अजां हो रही है जल्द पिला साकी ।

इबादत करूं आज मखमूर होकर ॥

लेकिन जब इन रिन्दों की भक्ति-उपासना का मर्म सामान्य व्यक्ति नहीं समझ पाता तो उन्हें खीझ आना स्वाभाविक ही है । अकवर इलाहाबादी ऐसे नासमझों को ही ताड़ा देते हैं :

हंगामा है क्या बरपा, थोड़ी सी जो पी ली है ।

डाका तो नहीं मारा, चोरी तो नहीं की है ॥

खंर, बात निकली थी ताजमहल से । ताजमहल के शिल्प और सौन्दर्य के बारे में लोगों की रायों में भिन्नता की ज्यादा गुंजाइश नहीं है । लेकिन उसके निर्माण के पीछे क्या भावना थी, इस बारे में मतान्तर है । विदेशी महिला को ताज शाह-जहां के अमर, उदात्त प्रेम का प्रतीक प्रतीत हुआ । लेकिन उर्दू के एक आधुनिक शायर की नजर में :

एक शहंशाह ने, दौलत का सहारा लेकर,

हम गरीबों की मोहब्बत का बनाया है मजाक ।

ऐसा प्रतीत होता है कि उर्दू का यह आधुनिक शायर वादों के चक्कर में पड़ गया है । तभी उसे इस सौन्दर्य के पीछे भी मजाक उड़ाने की सम्भावना ही नजर आ रही है ।

ताजमहल जैसे अप्रतिम भव्य भवन के निर्माण के पीछे यदि कोई शक्ति हो सकती है तो वह प्रेम की शक्ति ही है । यह प्रेम राजा के हृदय में भी उदित हो सकता है, फकीर के हृदय में भी । तभी तो कबीर कहते हैं :

प्रेम न बाड़ी ऊपर्जे प्रेम न हाट बिकाय ।

राजा परजा जिंहि रुचै शीश देइ ले जाय ॥

लेकिन इस प्रेम की पहचान क्या है ? क्या सबूत है कि शाहजहां वास्तव में मुमताज से अगाध प्रेम करता था ? शायद कबीर के दोहे से ही आपकी शंका का

## ५० — फिर इस अन्दाज से बहार आई

समाधान हो जाए :

प्रेम पियाता जो पिये, सीस दल्छुना देय ।

लोभी सीस न दे सके, नाम प्रेम का लेय ॥

अगर शाहजहां का प्रेम सच्चा नहीं था तो उसे मुमताज की याद में ताज बनाने के लिए कौन बाध्य कर सकता था ? मृतप्रायः प्रेयसी से किए गए वायदे को तोड़ना कौनसी मुश्किल थी ? तभी तो साकिब लखनवी साहब फरमाते हैं :

साफ कह दीजिए वायदा ही किया था किसने ?

उच्च क्या चाहिए, भूलों को मुकरने के लिए ?

कवियों, कलाकारों तथा अन्य सहृदय जनों के साथ ही सामान्य लोगों का भी ऐसा खयाल है कि ताजमहल का सौन्दर्य ऋतु-मान के साथ बदलता रहता है । पूनम की रात में ताज का सौन्दर्य अवर्णनीय होता है । लेकिन अमावस्या की काली रात्रि की पृष्ठभूमि में श्वेत स्फटिक और भी उज्ज्वल हो उठता है ।

अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखने पर ताज के सौन्दर्य में नये-नये आयाम जुड़ते जाते हैं । तभी तो देवभाषा संस्कृत के किसी कवि ने कहा है :

क्षणे क्षणे यन्ननवतासुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ।

—प्रतिक्षण जिसमें नवीनता दृष्टिगोचर हो उसीको रमणीयता कहते हैं ।

सौन्दर्य क्षण-क्षण बदल सकता है । किन्तु उस एक क्षण की अनुभूति ही महाकाल का रूप धारण कर सकती है । पुरुष और नारी कालग्रसित होते हैं । किन्तु पुरुष के पुरुषत्व तथा नारी के नारीत्व की काल को सीमा में नहीं बांधा जा सकता ।

दिनकर अपने महाकाव्य उर्वशी में इसी सत्य का मंडन करते हैं :

वह निरञ्च आकाश, जहां की निर्विकल्प सुषमा में,

न तो पुरुष मैं पुरुष, न तुम नारी केवल नारी हो ।

यह कालातीत शक्ति जब काल की सीमा में बंधती है तब :

धरते तेरा ध्यान चांदनी मन में छा जाती थी,

चुंबन की कल्पना अंग में सिहरन उपजाती थी ।

क्षण-क्षण बदलने वाले सौन्दर्य की तो सिर्फ अनुभूति ही की जा सकती है । उसका मानसिक विश्लेषण संभव नहीं प्रतीत होता है ।

विश्लेषण तथा तर्क के मार्ग का अन्त नहीं । सबसे सीधा, सुखदायी रास्ता है—मन को भाने वाली बात के समर्थन में आवश्यक तर्क जुटा लेना । तभी तो कहा गया है ‘मानो तो देव, नहीं तो पत्थर ।’

पर्वत पर पड़ा पत्थर भी पूजागृह में आकर शालिग्राम बन जाता है । यही प्रेम की महिमा है ।

## मुझको कहां ढूँढ़े बन्दे मैं तो तेरे पास रे !

एक बाप की तीन लड़कियां। तीनों विवाह के योग्य। बाप ने अखबार में सम्पादक के नाम एक पत्र छपवाया : आजकल लड़कियां खुद कमाती हैं और उनका वेतन भी पुरुषों से कम नहीं होता, फिर उनकी शादी का खर्च पिता को ही क्यों उठाना पड़े ?

एक दूसरे पिता ने, जिसकी विवाह योग्य चार लड़कियां थीं, दूसरा पत्र छपवाया। उसमें सुधार दिया कि लड़कियों के विवाह के खर्च से बचने के लिए सामूहिक विवाहों की प्रथा चलाई जाए।

धीरे-धीरे सामूहिक विवाहों की प्रथा भारत में प्रचलित भी होती जा रही है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रथा से विवाहों पर होने वाले अनाप-शनाप खर्चों में कमी आ गई है। पर ऊपर हमने अखबार में छये जिन पत्रों की चर्चा की है वे भारत के नहीं, ब्रिटेन के हैं।

यह विवाद यहीं समाप्त नहीं होता। पहले वाले बाप की एक लड़की भी इस विवाद में कूद पड़ी। उसने एक पत्र छपवाया : यदि हम लड़कियों की नीलामी होती ही है, तो उसका पूरा पैसा हमारे ही हाथ में आना चाहिए (हमारे बाप के हाथ में नहीं) और उसे हम ही अपनी शादी पर खर्च करेंगी।

तब एक संवाददाता का पत्र छपा : जब हम बाजार से कोई वस्तु खरीदते हैं और खरीदने के बाद वह दुकानदार के कथनानुसार सन्तोषजनक नहीं निकलती, तो ईमानदार दुकानदार उसे वापस ले लेता है, या उसके बदले दूसरी दे देता है। जिस दुलहिन के लिए दूल्हे ने या उसके परिवार ने पैसा खर्च किया है, वह यदि तसली-बख्त नहीं हुई तो...?

ब्रिटेन के 'टाइम्स' नामक अखबार में यह विवाद चल ही रहा था कि एक आयकर अधिकारी का पत्र छपा : वधु के शुल्क के रूप में जो पैसा लड़की को या उसके बाप को मिलेगा उसके सम्बन्ध में उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि ब्रिटेन के कानून के अनुसार अपनी बड़ी हुई आय पर उन्हें उसी हिसाब से आयकर भी चुकाना चाहिए।

भारत भी जाने-अनजाने पश्चिम के जीवन-मूल्यों की ओर जिस तेजी से भागता जा रहा है उसे देखते हुए वह दिन दूर नहीं जब यहां के अखबारों में भी इस प्रकार के पत्र छपा करेंगे। अभी तक भारत में विवाह को दो शरीरों के बजाय दो आत्माओं का मिलन अधिक माना जाता है। पर पश्चिम का दृष्टिकोण इस विषय में

५२ — फिर इस अन्दाज से बहार आई

क्या है, यह निम्न उक्तियों से पता लगेगा :

विवाह एक ऐसी रूमानी नाटिका है जिसके पहले ही अंक में नायक मर जाता है।

विवाह एक ऐसी लाटरी है जिसमें पुरुष अपनी स्वतंत्रता दांव पर लगाते हैं और नारियां अपनी प्रसन्नता।

प्रेम है विवाह का सूर्योदय और विवाह है प्रेम का सूर्यास्त।

बहरा पति और अन्धी पत्नी ही हमेशा सुखी दामपत्य जीवन बिता सकते हैं।

पुरुष शादी करने के अगले दिन ही कम से कम सात साल बूढ़ा हो जाता है।

विज्ञान और आद्योगिक सम्यता के विस्तार ने संसार को जितना छोटा कर दिया है, उतना ही पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण की दूरियों को भी समाप्त कर दिया है। योग, आध्यात्मिकता और 'हरे कृष्ण' की ओर पश्चिम का अनुराग बढ़ रहा है, तो उद्योगीकरण और भौतिक समृद्धि के प्रति पूर्व की लालसा निर्वाच और निर्द्वन्द्व होती जा रही है। शायद दोनों ही अपनी स्थितियों से असन्तुष्ट हैं—एक समृद्धि की अति से, एक अभावग्रस्तता की अति से।

अब यहां भी तलाक को सरल बनाया जा रहा है, विवाह का पंजीकरण अनिवार्य किया जा रहा है और गर्भपात को वैध ठहराया जा रहा है। जिन वारों के लिए कभी पश्चिम की आलोचना की जाती थी, वे सब वारों अब भारतीय जनता के जीवन का भी अंग बनती जा रही हैं। यह सब प्रगति की निशानी है, या परागति की, यह बहस व्यर्थ है। हां, इतना सत्य है कि समय की सूझियों को पीछे नहीं बुमाया जा सकता।

भौतिकता और आध्यात्मिकता—दोनों की अतियां अन्धकार की ओर ले जाती हैं। यह तत्त्व-बोध केवल आज का नहीं है, प्रत्युत वैदिक कृषियों ने इसे सृष्टि के उषाकाल में ही हृदयंगम कर लिया था। यजुर्वेद में लिखा है :

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते ।

ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रता ॥

—जो केवल भौतिकता की उपासना करते हैं वे घने अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो केवल आध्यात्मिकता की उपासना करते हैं, वे उससे भी घने अन्धकार में गिरते हैं। गिरने का खतरा दोनों ओर है। जोश मलीहाबादी ने कहा है :

कदम इन्साँ का राहे-दहर में अर्था ही जाता है ।

चले कितना ही कोई बचके ठोकर खा ही जाता है ॥

कबीर ने भी अपने जीवन में बहुत ठोकरें खाईं। बहुत भटके। घर संसार त्यागकर, फकीर बनकर, बलख तक पहुंचे। पर मन की भटकन दूर न हुई। जिस साईं की खोज में निकले थे, वह न मिला। तब लौट आए घर। और तब एक नये सत्य की खोज की—कि साईं यहीं है—घर में, परिवार में, मेहनत-मजदूरी में। यह

मुझको कहां ढूँढ़े बन्दे मैं तो तेरे पास रे □ ५३

सब माया नहीं है । घर में जब फिर रम गए तो एक दिन शाम को बैठे-बैठे मस्ती में गुनगुनाने लगे :

तेरा साईं तुज्हमें ज्यों पुहुपन में वास ।

कस्तूरी का मिरग ज्यों फिर फिर ढूँढ़े धास ॥

आत्मा और परमात्मा का मिलन ही कबीर के रहस्यवाद की चरम परिणति है । उसके लिए रूपक है पति-पत्नी के सम्बन्ध का ही । परन्तु प्रेम की इस पूर्णता के लिए पति-पत्नी के सम्बन्धों का उदात्तीकरण आवश्यक है । भारतीय संस्कृति ने विवाह को नर-नारी का समागम न मानकर पुरुष और प्रकृति के समागम से उसकी तुलना करके उसे आध्यात्मिक वरातल पर प्रतिष्ठित किया है । 'मैं राम की तो वहु-रिया रे' कहकर राम के साथ अपना तादात्म्य जोड़ने वाले कबीर जब कहते हैं : मुझको कहां ढूँढ़े बन्दे मैं तो तेरे पास रे ।

तब आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ वे विवाह के भारतीय आदर्श की ओर भी संकेत करते हैं ।

गणित के हिसाब से एक और एक मिलकर दो होते हैं, पर विवाह में यह गणित उलट जाता है—वहां एक और एक मिलकर एक ही बनते हैं । ऐस्य साधना जैसे श्रेय मार्ग के लिए वैसे ही प्रेय मार्ग के लिए—दोनों के लिए आवश्यक है । यही भारतीय तत्त्वज्ञान का मूल है ।

## लक्ष्मी जी का मायका

एक बार नेहरू जी पंजाब में कपूरथला के पास दाहर नामक स्थान पर किसी 'सिचाई-योजना' का उद्घाटन करने गए थे। उच्च अधिकारियों ने उद्घाटन की रस्म के समय खुदाई के लिए उनके हाथ में चांदी की कुदाली थमा दी। नेहरूजी ने चांदी की कुदाली एक ओर फेंक दी और पास पड़ी एक लोहे की कुदाली उठाकर वे बोले, "क्या भारत का किसान चांदी की कुदाली से खुदाई करता है?"

किसान भले ही चांदी की कुदाली से खुदाई न करे, पर चांदी के बर्तनों में भोजन करने में शान तो आज भी समझी ही जाती है। राजा-महाराजा समाप्त हो गए और स्वर्ण-नियन्त्रण कानून लागू हो गया, फिर भी जनता के मन से न सनें का मोह जाता है, न चांदी का। अमीर खुसरो की एक कह-मुकरी है :

हाट चलत मैं पड़ा जो पाया खोटा खरा मैं ना परखाया।

ना जानूं वह हैगा कैसा है सखि साजन? ना सखि पैसा॥

पैसे की विशेषता यही है कि उसके खोटे-खरे की बिना परवाह किए आदमी दिन-रात उसके पीछे भागता रहता है।

पुराणों के कर्ता ऋषि-महर्षि अवश्य बहुत बड़े व्यंग्य-लेखक और व्यंग्य-चित्रकार रहे होंगे—तभी तो उन्होंने गजवदन गणेश जी का वाहन चूहे को बनाया और लक्ष्मी का वाहन ऐसे प्राणी को बनाया है जिसे रोशनी से नफरत है।

इस पौराणिक कल्पना से ही मनुष्य जाति को कुछ सबक लेना चाहिए था, पर कौन सुनता है लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए अमीर-गरीब सभी हाथ धोकर उसके पीछे पढ़े हैं। त्रिटिश कवि और नाटकाकार आस्कार वाइल्ड ने लिखा है :

समाज में केवल एक ही वर्ग ऐसा है जो धनियों से भी अधिक पैसे के बारे में चिन्ता करता रहता है, और वह वर्ग है गरीबों का।

लोगन पीयरसाल स्मिथ ने लिखा है :

जो लोग परमात्मा और कुबेर दोनों की आराधना करने निकलते हैं वे जल्दी ही यह खोज निकालते हैं कि परमात्मा कहीं नहीं है।

जार्ज बर्निं शा ने अपनी पैनी और चुभने वाली शैली में लिखा है :

सिद्धांतहीन और संकल्प-शून्य धनी लोग आधुनिक समाज में सतीत्व-शून्य गरीब औरतों की अपेक्षा कहीं अधिक स्तरनाक हैं।

पुराणकर्ताओं ने ही समुद्र-मन्थन की कथा भी लिखी। जहां उन्होंने हिमालय को पार्वती का पिता कहा, वहां समुद्र को लक्ष्मी का पिता बतलाया। कैसी अनोखी और काव्यात्मक कल्पनाएं थीं उन पुराण-पुरुषों की। लक्ष्मी के पिता रत्नाकर, तो

लक्ष्मी के पति भगवान् विष्णु । और भगवान् विष्णु को ससुराल इतनी प्यारी कि अपना बैकुण्ठ लोक छोड़कर वे क्षीर सागर में ही मन । जरूर इसमें लक्ष्मी का हाथ रहा होगा—उसने अपने मायके और पीहर के इतने गीत गए होंगे कि अन्त में विष्णु ने अपने सब सगे-सम्बन्धियों को छोड़कर क्षीर सागर को ही अपना स्थायी निवास बना लिया होगा । यह उल्टी गंगा तो बहनी ही थी । गोस्वामी तुलसीदास तो कह गए हैं :

ससुरारि पियारी लगी जब ते, रिपुरूप कुदुम्ब भए तब ते ।

लखिमा ठकुरानी नामक एक नाति प्रसिद्ध कवयित्री ने अत्यंत भावविभोर होकर विष्णु भगवान् की स्तुति की है :

रत्नाकरो हि भवनं गृहिणी च पद्मा  
देवं किमस्ति भुवने जगदीश्वराय ।  
राधागृहीत मनसो मनसास्ति दैन्यं  
दत्तं भया निजमनः तदिदं गृहण ॥

—रत्नाकर आपका निवास-स्थान है, पल्नी आपकी साक्षात् लक्ष्मी है, आप स्वयं जगत् के ईश हैं हीं, फिर संसार में ऐसी कौनसी चीज है जो आपको सुलभ न हो । हाँ एक बात है—उस निगोड़ी, अहीर की छोरी, राधा ने आपका मन चुरा लिया है, इसलिए आपके पास मन का ही अभाव है । लीजिए, मैं उसके बदले अपना मन आपको देती हूँ कृपया इस भेट को स्वीकार करें ।

पर इस निष्ठ विज्ञान के युग में केवल पौराणिक आत्मानों और कविकल्पनाओं से काम नहीं चलता । न कविता लिखने-पढ़ने से गुजारा चलता है । कविवर सौदा जब अपने शायराना अंदाज में कहते हैं :

फिके-मग्राश, इश्के-बुतां याद-रफ्तगां ।

इस दो रोजा जिन्दगी में कोई क्या क्या किया करे ॥

—आर्थिक चिन्ता, सौन्दर्य से प्रेम, और प्रियजनों का स्मरण—इस दो दिन के जीवन में कोई क्या-क्या करे !’ तब इस निराशा के उद्गार से रोजी या रोटी नहीं मिलेगी !

पृथ्वी की कोख से सोना, चांदी और लोहा आदि धातुएं तथा कोयले जैसे ऊर्जा के अजल माध्यम को निकालते-निकालते जब इनके भण्डारों में कमी आने लगी, तब संसार के सभी देशों का समुद्र के गर्भ में छिपी अपार सम्पदा की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक था । पृथ्वी की कोख अब सूनी होती जा रही है और समुद्र-गर्भ रत्नों से भरा का भरा है ।

भारत की ४००० मील की समुद्री तट-रेखा है और १२८० मील के इसके द्वीप-समूह हैं, परन्तु अभी तक इसने अपने रत्न-गर्भ समुद्र का दोहन नहीं किया । संसार के विकसित देशों में आज अपने-अपने समुद्रों के दोहन के लिए होड़ लगी है ।

## ५६ — फिर इस अन्दाज से बहार आई

भारत ने अभी तक बम्बई-हाई में ही खोज की है और वहाँ पेट्रोलियम के रूप में इतना तरल सोना निकला है कि सन् १९६० तक भारत इस दिशा में सर्वथा आत्म-निर्भर होने का स्वप्न देखने लगा है।

समुद्र में पैदा होने वाली मछलियाँ जहाँ देश में निरन्तर बढ़ती जनसंख्या की खाद्य-समस्या को हल कर सकती हैं, वहाँ समुद्री धास प्रोटीन की कमी पूरी कर सकती है, और समुद्री ज्वार से ऊर्जा पैदा की जा सकती है समुद्र के गर्भ में निकल, तांबा और कोवाल्ट आदि धातुओं के भी अदृश्य भण्डार हैं।

इस समुद्री सम्पदा के दोहन के लिए विकसित देशों की होड़ का यह हाल है कि उन्होंने समुद्री विज्ञान के प्रशिक्षण के नाम पर या सर्वेक्षण के नाम पर, अपने या पराये समुद्र में, बड़े-बड़े जलपोत तैनात कर दिए हैं। ये जलपोत सामान्य जहाज न होकर पूरे कारखाने हैं और उनमें समुद्री खाद्य को डिब्बाबन्द करने के पूरी व्यवस्था है। यह 'सी फूड' स्वदेशवासियों के भी काम आता है और नियर्ति के भी।

क्षीरसागर लक्ष्मी का मायका ! वहीं सहस्र फणधारी शेषनाग की शय्या पर विष्णु भगवान विश्राम-मग्न। लक्ष्मी जी उनकी चरण सेवा में। अब अगर जनता रूपी जनादन (विष्णु) की आराधना करनी हो तो लक्ष्मी जी के मायके समुद्र की शरण लीजिए। वही भारत की गरीबी दूर करेगा।

## शब्दों की दुनिया

शब्दों की दुनिया बड़ी विचित्र है।

महाभाष्य में एक संकेत है। वृहस्पति ने इन्द्र को व्याकरण पढ़ाया। तब तक व्याकरण के नियमों का निर्धारण तो हुआ नहीं था, इसलिए वृहस्पति एक-एक शब्द करके इन्द्र को पढ़ाने लगे। सहस्र वर्ष बीत गए, किन्तु व्याकरण समाप्त नहीं हुआ। अन्त में वृहस्पति थक गए और व्याकरण की पढ़ाई बन्द हो गई। तब इन्द्र ने प्रतिपद पढ़ाने-पढ़ाने के स्थान पर व्याकरण के सामान्य नियम निर्धारित किए जिनमें एक-एक नियम के परिवेश में सहस्रों शब्द आ गए। ये नियम ही व्याकरण कहलाए और यह व्याकरण इन्द्र द्वारा प्रतिपादित होने के कारण ऐन्द्र व्याकरण कहलाया।

गान्धार देश के शलातुर ग्राम में जन्म लेने वाले 'अष्टाघ्यायी' के प्रणेता महर्षि पाणिनि से बहुत पहले की यह कथा है परन्तु यह इस बात की द्योतक है कि भारत में शब्द-साधना की यह परम्परा हजारों साल पुरानी है। तभी तो कहा गया है :

अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं स्वलपं तथायुर्बहवश्च विद्धाः।

—शब्दों का शास्त्र अन्तहीन है, आदमी की जिन्दगी बहुत थोड़ी है और उसके साथ सैकड़ों भंडट भी लगे हुए हैं। फिर शब्दशास्त्र का पार कोई कैसे पावे।

इतना ही क्यों, महाराज भर्तृहरि ने व्याकरण के अपने मार्मिक और विद्यम ग्रन्थ 'वाक्यपदीय' का प्रारम्भ इस श्लोक से किया है :

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥

—शब्द-तत्त्व आदि-अन्त रहित अक्षर ब्रह्म है और इसके अर्थरूप में उद्भूत हो जाने पर सृष्टि की प्रक्रिया का विवर्त चल पड़ता है।

व्याकरण के पंडितों ने शब्द-तत्त्व की साधना अपने ढंग से की है और काव्य-शास्त्र के पंडितों ने अपने ढंग से। व्याकरण शास्त्रियों की शब्द-साधना नीरस थी, तो काव्यशास्त्रियों की शब्द-साधना अर्थ-प्रधान होने के कारण सरस है। काव्य-शास्त्रियों ने रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, श्रौचित्य और ध्वनि को प्रधानता देते हुए अपने अलग-अलग सम्प्रदाय ही स्थापित कर लिए और साहित्य के अध्येताओं में आज भी एतद्विषयक ऊहापोह का ओर-छोर नहीं है। इन्हीं काव्यशास्त्रियों के आदि-

४६ □ फिर इस अन्दाज से बहार आई

गुरु भामह ने लिखा है :

इदं श्रव्यन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम् ।

यदि शब्दाद्वयं ज्योतिः आसंसारं न विद्यते ॥

—तीनों लोक अन्धकार से आच्छन्न होते, अगर शब्द नाम की ज्योति संसार में प्रकट न होती ।

राजा बदल गए, राज्य पलट गए, और पता नहीं कितनी क्या उथल-पुथल हो गई, पर भारतभूमि में यह शब्द-साधना अखण्ड रूप से चलती रही । इन शब्द-साधकों की दृष्टि इतनी सूक्ष्म थी कि उसका जोड़ घरती पर नहीं मिलेगा । महाभाष्य में ही लिखा है :

मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

स वाग वज्जो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्र शत्रुः स्वरतोऽपराधते ॥

—किसी मंत्र का स्वर या कोई वर्ण (अक्षर) गलत उच्चरित हो जाए तो वह वज्र बनकर यजमान का ही विनाश कर देता है, जैसे 'इन्द्रशत्रु' शब्द में गलत स्वर का प्रयोग होने से इन्द्र का शत्रु वृत्र मारा गया ।

शब्द अपने-आप में निर्जीव है, पर उसके प्रयोगकर्ता के संकलन के अनुसार उसमें ऐसी शक्ति पैदा हो जाती है कि अणुबम का विस्फोट भी उसकी क्या तुलना करेगा । जिस तरह किसी कलाकार के हाथ में पड़कर अनघड़ पत्थर भी सौन्दर्य की प्रतिमा के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, वैसे ही कवि और साधक के हाथ में पड़कर शब्द भी चमत्कार पैदा कर सकता है । अलाइश ने कहा था :

प्रश्न यह है कि तुम शब्दों से इतने भिन्न-भिन्न अर्थ निकाल भी सकते हो ?

और प्रसिद्ध विचारक लौक ने लिखा था :

संसार में कलह और संघर्ष काफी कम हो जाते यदि शब्दों से वही विचार ग्रहण किए जाते जिनका वे संकेत करते हैं ।

तो न्यू टेस्टामेन्ट कहता है :

तुम अगर निन्दाभाजन बनोगे तो शब्दों के कारण ही ।

पर इसके विपरीत अन्ना एच० ब्रांच ने लिखा है :

परमात्मा ने सौन्दर्य का, सितारों का और पंछियों का एक जाल बनाया, पर शब्दों से बढ़कर सुन्दर कुछ नहीं बन पाया ।

इस सुन्दर वस्तु का भी जब लोग अपव्यय करने पर तुल जाते हैं तब केवल शब्दाद्म्बर और वाग्जाल मात्र रह जाता है और काम की बात रह ही जाती है । इसी पर व्यंग करते हुए अंग्रेजी के उपन्यासकार सेमुअल बट्टलर ने लिखा है :

सबसे बढ़िया वक्ता वह माना जाता है जो ढेर सारे शब्दों का प्रयोग करके भी कोई काम की बात नहीं कह पाता ।

एक कथा याद आ रही है । किसी घर में एक वीणा वर्षों से रखी हुई थी ।

जब भी घर में कोई गम्भीर चर्चा चल रही होती, कोई बच्चा जाकर उस वीणा को छेड़ देता और बड़े-बड़े लोग नाराज हो जाते—‘यह क्या शोर मचा रखा है, इसे बन्द करो।’ जब कोई मेहमान घर में आता तो वीणा को छिपा दिया जाता कि कहीं कोई बच्चा शरारत न कर बैठे। पर मेहमान के जाते ही बच्चों को फिर वीणा याद आ जाती। रात-विरात चूहों की उछल-कूद और बिल्ली द्वारा चूहों का पीछा किए जाने से भी वीणा गिर पड़ती, तो घर वालों की नींद हराम हो जाती।

अन्त में उस वीणा से तंग आकर घर वालों ने उससे पीछा छुड़ाने के लिए उसे घर से बाहर कूड़ेदान में फेंक दिया। सोचने लगे कि अब तो सुख-चैन की नींद सो सकेंगे।

इतने में ही एक बूढ़ा भिखारी उधर से गुजरा। उसने कूड़े में पड़ी लावारिस वीणा उठा ली और पास ही एक वृक्ष के नीचे बैठकर उसे बजाने लगा। वीणा से निस्त्रुत मवुर स्वर-लहरी उस घर के अन्दर भी पहुंची। घर वाले बाहर निकल आए—देखा कि पेड़ के नीचे बैठा भिखारी बड़े मुख्य-भाव से वीणा बजा रहा है।

घरवालों की आंखों में आंसू आ गए। वे उस भिखारी से कहने लगे—“क्षमा करना, हमें पता नहीं था कि इस वीणा में इतना संगीत छिपा है। हमारे लिए तो यह मुसीबत का कारण थी। तुमने हमारी आंखें खोल दीं।”

भिखारी ने कहा, “वीणा में कुछ नहीं छिपा है। जैसी अंगुलियां लेकर आदमी वीणा के पास जाता है, वीणा से वैसा ही स्वर निकलने लगता है।”

वही बात शब्द के साथ है। आदमी वीणा को दोष देने लगता है, अपनी अंगुलियों को नहीं देखता। सधी हुई अंगुलियों से वीणा में ऐसी आवाज निकलती है जो तिलिस्म से कम नहीं होती। तिलिस्म भी कैसा? ठीक वैसा जिसके लिए फिराक गोरखपुरी ने लिखा है :

आवाजे तिलिस्म तीरणी तोड़ती है।

जल्फे पुरखम आनाने शब मोड़ती है॥

—वह तिलिस्मी आवाज अंवेरे को वैसे ही तोड़कर रख देती है जैसे सुन्दर केशराशि रात की राह को मोड़ देती है।

शब्दों की दुनिया पर अचानक ध्यान इसलिए चला गया कि नेशनल सोलिडैटी दिवस पर बोलते हुए प्रधान मन्त्री को ‘सोलिडैटी’ का हिन्दी या उर्दू में कोई उचित पर्यायवाची शब्द नहीं मिला, इसलिए उन्होंने बारम्बार ‘सोलिडैटी’ शब्द का ही प्रयोग किया। यह सचमुच हिन्दी और उर्दू वालों के लिए एक चुनौती है। कुछ लोगों ने इसके लिए ‘संगठन’, ‘इत्तिहाद’, ‘दृढ़ता’, ‘एकबद्धता’ और ‘बनत्व’ जैसे शब्द सुझाए हैं, पर सचमुच ही उनमें किसीसे भी सन्तोष नहीं होता। एक मित्र कान में आकर कह रहे हैं—‘सोलिडैटी’ के लिए ‘संहति’ शब्द कैसा रहेगा? पर क्या जनभाषा की दृष्टि से यह शब्द किसीको पतेगा?

## भारत के ये रसीले राजदूत

राजदूत का पद बड़ा गौरवपूर्ण समझा जाता है। इसीलिए राजदूतों का चुनाव करने में सरकारें बड़ी सावधानी बरतती हैं। भारत सरकार भी यही करती है।

परन्तु मनुष्य की अपनी सीमाएँ हैं। तब पूरक के रूप में हस्ति-शावक की बारी आई। जिन-जिन देशों में भारत के हस्तिशावक गए, उन-उन देशों के बालक भारत के प्रति अनुरक्त हुए बिना नहीं रहे।

परन्तु भारत के प्रति पश्चिमी देशों का अनुराग जगाने में जिस वस्तु ने सबसे अधिक सफलता पाई है, वह है आम। इसलिए आम को अब 'भारत के नये राजदूत' का चिताव दिया जाने लगा है। मानवी राजदूत दुर्लभ विदेशी मुद्रा वेरहमी से खर्च करते हैं, पर ये 'नये राजदूत' भारत को विदेशी मुद्रा कमा कर देते हैं।

सबसे पहले आम के इस महत्व को स्वर्गीय पं. जवाहरलाल नेहरू ने पहचाना था और तबसे इस रसीले फल का महत्व निरन्तर बढ़ता ही जाता है।

आम स्वनामधन्य वृक्ष है। आदम और हवा ने जिस ज्ञान-वृक्ष का फल स्वाधा था, कहते हैं, वह सेव था। यों सेव मानव-जाति की दृष्टि से अभिशप्त है—जिसने मानव को स्वर्ग से वंचित कर दिया। पर आम इसी घराधाम का ऐसा फल है कि उसके लिए देवता भी स्वर्ग से उत्तरना चाहेंगे।

अन्य और कौनसा वृक्ष है जिसने अपने पत्लव, पुष्प और फल के रूप में सहदयों और कलाकारों को इतना प्रभावित किया हो, जितना आम ने किया है। संस्कृत के कवि तो इसकी प्रशस्ति में यहां तक आगे बढ़ गए कि उन्होंने पुष्पकेतु कामदेव की विश्वविजय में सबसे अधिक सहकारी सहकार को ही माना है। कालिदास के 'मेघदूत' पर मलिनाथ ने अपनी टीका में लिखा है कि सहकार-तरह सुन्दरियों के मुख की वायु से कुसुमित हो उठता है। रघुवंश में आग्रलता का भी वर्णन है, जिससे पता लगता है कि उस युग में आमों की लता भी विकसित की जा चुकी थी। संस्कृत के एक कवि ने एक अन्योक्ति लिखी है :

कुन्दे कदम्बे कुमुदेऽरविन्दे यथा कथंचित् समयं नयन्ति ।

प्राप्ते वसन्ते पुनरुत्तरंगा रसाल जानीहि तवैव भृगा ॥

—भौंरे, कन्द, कदम्ब, कुमुद और कमल में किसी तरह अपना समय व्यतीत करते रहते हैं, परन्तु जब समय आता है तब तरंगित होकर, रे रसाल ! वे तुझे छोड़

कर और कहीं नहीं जाते ।

शायद आम के इसी ठाठ को देखकर अन्य फल इससे ईर्ष्या करने लगे । परन्तु ईर्ष्या स्वयं ईर्ष्यालिंग को ही अन्दर-अन्दर जलाती रहती है । उसका भी वर्णन कवि के ग्रनोखे अन्दाज में देखिए :

आकर्ष्यांश्रफल स्तुतिं जलमभूत्त्वारिकेलान्तरं

प्रायः कण्टकिं तथैव पनसं जातं द्विचोर्बालुकम् ।

आस्तेऽबोमुखमेव कादलफलं द्राक्षाफलं क्षुद्रतां

श्यामत्वं बत जास्त्वं न तमहो मात्सर्यदोषादिह ॥

—आम की तारीफ सुनकर नारियल अंदर से पानी पानी हो गया, कटहल के कांटे निकल आए, खरबूजे में दरार (धारियां) पड़ गईं—फूट फूट गईं, केले ने पेड़ पर अपना मुँह शर्म से नीचे लटका लिया, अंगूर तो एकदम क्षुद्र (छोटा) बन गया और जामुन का चेहरा काला स्याह पड़ गया—ईर्ष्या और मत्सर के दोष से ये फल भी किस बुरी तरह ग्रस्त हैं ।

कुछ आमों के नाम ही ऐसे शानदार होते हैं कि उनसे उनके ऊंचे खानदान का आभास होता है—जैसे बेनिशान, जहांगीर, मूलगोप्रा । आम के कुछ नाम इतने रूमानी हैं कि सुनकर रसना रसाप्तावित हो उठती है । और तो और औरंगजेब जैसे नीरस व्यक्ति भी आमों के इस जादू से नहीं बच सके । ‘रसना-विलास’ और ‘दिल-बहिश्त’ जैसे नाम उसी कट्टर वर्मान्व और नीरस व्यक्ति के दिए हुए हैं । यों आप चाहें तो उसे ‘शहद का मुहरबन्द गिलास’ और रेशा-रेशा खुशबु-ए-कैद भी कह सकते हैं ।

जिसने बम्बई का हापुस, पश्चिमी तट का अल्फांजो, मैसूर का बादामी, दक्षिण भारत का खादर, बनारस का लंगड़ा, लखनऊ का दशहरी, मेरठ का सरोली, सहारनपुर का कलमी और रटोल का रटोल आम नहीं खाया, ‘वृथा गतं तस्य नरस्य जीवितम्’—उस आदमी की सारी जिदी वर्य चली गई ।

सफेदा, सिन्दूरी, मालदा, गुलाबजामुन, कृष्णभोग, तोतापरी, नीलम परी, फजली, टिकारी—और न जाने क्या-क्या बीसियों तरह की किस्में हैं इसकी और सब एक से एक बढ़कर ।

मजेदार बात यह है कि यह गूदेदार अनुपम फल ऊंचे पहाड़ों पर नहीं होता, मैदानों में ही होता है, और वह भी गर्भी के मौसम में । गर्भियां आते ही जो लोग ठण्डक की तलाश में पहाड़ों पर भाग जाते हैं—अभागे हैं वे लोग । जो लोग नीचे रह जाते हैं उन्हें प्रकृति अपनी ओर से मैदानों की गर्भी का यह मुआवजा देती है । इतना बढ़िया मुआवजा—जिसके लिए पर्वत के शिखर पर आसीन लाट साहब भी तरसें ।

गालिब की बात यह आई । आमों की गुठलियां और छिलके गालिब के घर के बाहर पड़े थे । एक गधा उधर से गुजरा । उसने उन छिलकों और गुठलियों को सूंधकर छोड़ दिया । गालिब को आम खूब प्रिय है—इस हकीकत को जानने वाले

वहीं बैठे एक शायर ने गालिब को कसते हुए कहा—“देख लो मियां ! आम तो गवे भी नहीं खाते ।” गालिब कब चूकने वाले थे, तुरन्त बोले—“हाँ आप बजा फरमाते हैं—गवे आम नहीं खाते ।”

हम आमों की चर्चा कर रहे हैं और प्रधान मंत्री इन्दिरा गांधी ‘दस विदानिया’ कहकर सोवियत रूस के नेताओं से विदा ले रही हैं। तो इस पृष्ठभूमि में हमें रूस के ही फलों के एक ऐसे विश्वकर्मा की याद आ रही है जिसे लोग पागल और सनकी कहते रहे, पर जिसने जीवन भर की कड़ी मेहनत से साइबेरिया में, जहाँ सर्दियों में थर्ममीटर का पारा शून्य से भी ४० डिग्री नीचे पहुंच जाता है, भूमध्य-सागर जैसे सब फल पैदा करके दिखा दिए। उसने प्रकृति की पुरानी प्रणाली में भी क्रांति उपस्थित कर दी।

उस व्यक्ति का नाम था आइवान मिचूरिन। वह काजलोव नामक एक छोटे से कस्बे का निवासी था। उसे बागवानी का ऐसा चक्का लगा कि वह भरी जवानी में ही पेड़-पौधों पर तरह-तरह के परीक्षण करने लगा। उसने दक्षिणी प्रदेश के पौधों की कलमें शीत प्रदेश के पौधों पर लगाई। दस वर्ष तक उसे कोई सफलता नहीं मिली। पर उसने हिम्मत नहीं हारी। दीन-दुनिया को भूलकर वह अपनी साधना में लगा रहा।

यह जार के समय की, सन् १९०५ की बात है। उसने कृषि-मंत्रालय को अपने परीक्षणों की रिपोर्ट भेजी और अपने कार्यों के लिए सरकारी सहायता मांगी। पर उसे कोई जवाब नहीं मिला। तब उसने अमरीका के कृषि विभाग को पत्र लिखा। वहाँ से उत्तर मिला कि वे उसके सब पेड़-पौधे खरीदने को और उसे अपने प्रायोगिक उद्यान का अध्यक्ष बनाने को तैयार हैं। परन्तु मिचूरिन अमरीका नहीं गया।

इसके बाद जार का तख्ता पलट गया। रूस में लाल क्रांति हो गई। पर मिचूरिन अपनी तपस्या में लगा रहा। जब बोल्शेविक सत्ता आ गई, तब लेनिन को देश के पुनर्निर्माण की फिक हुई। उसने कुछ रूसी वैज्ञानिकों को अमरीका भेजा। उन रूसी वैज्ञानिकों ने मिचूरिन के अध्यवसाय की ओर नये प्रयोगों में सफलता की चर्चा अमरीका के वैज्ञानिकों से सुनी।

अन्त में सरकार का ध्यान उसकी ओर गया। जब वह सत्तर वर्ष का हो गया, तब देशभर में उसकी जयंती मनाई गई और सरकार की ओर से उसका सम्मान किया गया।

मिचूरिन ने उत्तरी रूस के बर्फिस्तान में रसभरी, नाशपाती, अंगूर, आड़, खुबानी और बादाम पैदा करके दिखा दिए तो गंगा-जमना के मैदानों में चमन का अंगूर, कश्मीर का सेब, ईरान का सरदा और काबुल का पिस्ता तथा बादाम क्यों नहीं पैदा हो सकते ?

## जब याद करूं हल्दीघाटी....

शहंशाह अकबर का दरबार लगा हुआ था । बड़े-बड़े सरदार हाजिर थे, कलावन्त और गुणवन्त भी । तभी अचानक समाचार आया : 'राणा प्रताप की मृत्यु हो गई' । (सन् १५६७ ई०)

सब दरबारी स्तब्ध हो गए । वहाँ उपस्थित लोगों में से बहुतों को ऐसा लगा कि अब तक जिसे अजेय शत्रु समझा जाता रहा, वह अनायास इस संसार से विदा हो गया, इसलिए यह प्रसन्नता का अवसर है । यह सोचकर उनके चेहरों पर खुशी की लहर दौड़ी ।

पर यह क्या ? शहंशाह अकबर स्वयं इस समाचार को सुनकर उदास हो गए । उन्होंने गहरा निःश्वास छोड़ा और उनकी आँख की कोर गीली हो गई ।

उनको किस बात का अफसोस था ? क्या राणा प्रताप के मरने से शहंशाह का कोई स्वप्न धराशायी हो गया ? जिसको जीतने के लिए इतना प्रयत्न किया, वह सब प्रयत्न निष्कल हो गया, क्या बादशाह के मन में इस बात की खिल्लता थी ?

बादशाह के चेहरे पर पड़ने वाली छाया या प्रकाश की लकीरों से मन का भाव भाँपने वाले और बादशाही मुखमुद्रा का सतत अभ्यास करके उसके अनुसार आचरण करने वाले, इस खिल्लता का अर्थ ढूँढ़ निकालने के लिए व्यग्र थे कि तभी मेघमाला में से तड़ित-गर्जन जैसी बुलन्द आवाज आई :

जस लेगो श्रणदाग पाघ लेगो श्रणनामी ।

गौ आडा गवडाय जाको बहुतो चुर बामी ॥

नवरोजे नह गयो न गौ आतसां नवत्ती ।

न गौ झरोखां हेठ जेठ दुनियाण दहल्ली ॥

गहलौत राणा जीति गयो दसण मूंदि रसणा डसी ।

नीसास मूक भरिया नयण तो मृतशाह प्रताप सो ॥

—हे गहलौत राणा प्रताप ! तूने आज तक किसी के आगे अपनी पगड़ी नहीं भुकाई, न अपने धोड़े (चेतक) को कहीं दाग लगने दिया । न तू नवरोज के लम्बांसे में गया, न बादशाह के नये-नये तम्बुओं में । न तूने कभी शाही झरोखे के जाकर सलाम बजाई । तू अपना यश सर्वथा निष्कलंक और बेदाग ले गया । राणा ! तू जीत गया, सचमुच तू जीत गया । मैंने बहुतों को जीता, पर तुझे न जीत

सका—यही सोचकर बादशाह ने दांतों तले जीभ दबाई, गहरा सांस छोड़ा, उसकी आंखें भर आईं और उसके मुख से निकला कि मनस्वी हो तो प्रताप जैसा ।

ऐसे समय, जब बहादुर से बहादुर व्यक्ति भी बादशाह के मन को भाँपने के लिए ठहर जाता, उस समय यदि शूरवीरों के अग्रणी महाराणा प्रताप का स्वर्गवास बिना दोहेसोरठे की श्रद्धांजलि के निकल जाएगा, तो सारा राजस्थान लज्जित होगा—अकबर का दरवार हो तब भी क्या है, राणा प्रताप को श्रद्धांजलि देने का कवि घर्म कहीं चूक न जाए—यह सोचकर दुरसा आढ़ा नामक चारण ने निडरता के साथ राणा प्रताप की वीरता और अकबर की उस समय की मनोदशा का चित्रण करके अपने कवि-घर्म का निर्वाह किया ।

अब इस चारण को बादशाह के कोप का शिकार बनना पड़ेगा, यह सोच कर और परिणाम की कल्पना करके बहुतों के मन उदास हो गए ।

पर तभी शहंशाह अकबर ने शान्ति से कहा—“खूब कहा कविराज ! खूब कहा । जो बात हमारे मन में थी वही तुमने कह दी—सचमुच राणा अजीत रह गया ।”

मन में प्रश्न उठता है कि कविता का जन्म कब होता है ? वाल्मीकि और भवभूति कहेंगे—करुणाप्लावित हृदय से कविता का जन्म होता है । कालिदास आदि कवि संयोग और वियोग से कविता के जन्म की बात करेंगे । सुरदास कविता का जन्म वात्सल्य से मानेंगे ! पर कविता का जन्म खांडे की धार जैसे तीक्ष्ण और भय-शून्य वज्र-हृदय से होता है, इसके उदाहरण भी इतिहास में कम नहीं हैं । शायद माता सरस्वती का कण्ठाभरण ऐसी ही परस्पर विरोधी भाव-मुक्ताओं से गुम्फित होने के कारण इतना मनोरम है ।

विरोधाभास का यह क्षण कविता में ही क्यों, मनुष्य के जीवन में भी तो आता है । हल्दीधाटी में विफल होने के पश्चात् जब राणा प्रताप सैन्य-विहीन होकर जंगल-जंगल और पहाड़-पहाड़ की खाक छान रहे थे और कई दिन भूखे रहने के बाद जंगली धास की रोटी भी बच्चों के हाथ से बन-बिलाव छीनकर भाग गया था, तब बच्चों का कहण-कङ्दन प्रताप के पितृ-हृदय को सहन नहीं हुआ और उन्होंने अकबर को संघिपत्र लिख भेजा ।

अकबर की बाढ़े खिल गईं । उसने उत्साह में आकर बीकानेर-नरेश के अनुज पृथ्वीराज राठौर को वह पत्र दिखाया । पृथ्वीराज ने कहा : “जहांपनाह ! मुझे यह जाली लगता है । यदि आप कहें तो मैं राणा को पत्र लिखकर इसकी सत्यता की जांच कर लूं !” बादशाह की अनुपति पाकर पृथ्वीराज ने राणा को जो पत्र लिखा वह यों था :

पातल जो पतसाह, बोले मुख हूँ ता बयण ।

मिहर पछम दिस मांहुँ ऊगे कासप राव उत ॥

पटकूँ मूळां पाण, कै पटकूँ निज तन करद । दीजै लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ॥

—हे राणा प्रताप ! क्या तूने अपने मुख से अकबर को 'बादशाह' कहकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली है ? क्या कश्यप-पुत्र सूर्य पश्चिम से उदय हो रहा है ! हे राणा ! मुझे एक बात साफ-साफ लिख दो—मैं अपनी मूळों पर ताव दूँ, या अपने शरीर को तलवार से चीर डालूँ ?

इसका जवाब जो पृथ्वीराज को मिला, वह भी खांडे की बार जैसा तेज था । महाराणा ने लिखा :

तुरक कहासी मुख पतौ, इण तन सूँ इकर्लिग ।  
ऊगे जाही ऊगसी, प्राची बीच पतंग ॥  
खुशी हूत पीथल कमध, पटको मूळां पाण ।  
पछरण है जै तो पतौ, कलिमां सिर के बाण ॥  
सांग मूँड सहसी सको, समजस जहर सवाद ।  
भड़ पीथल जीतो भलां, बैठा तुरक सूँ बाद ॥

—भगवान एकर्लिग की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं अकबर की अधीनता कभी स्वीकार नहीं करूँगा । सूर्य जहां सदा उदय होता है, वहां पूर्व में ही उदय होगा । हे वीर पृथ्वीराज ! जब तक प्रताप जीवित है, तब तक उसकी तलवार तुर्कों के सिर पर रहेगी । तुम प्रसन्न होकर अपनी मूळों पर ताव दो । प्रताप अपनी गर्दन पर भाले का बार सहने को तैयार है, पर अपयश का विष पीने को तैयार नहीं । हे वीर, तुम अकबर के साथ इस वाचिक विवाद में भली भाँति विजयी बनो ।

इस उत्तर को देखकर अकबर ने सहज ही मान लिया कि पहला पत्र जाली था ।

पृथ्वीराज स्वयं परिस्थितियों से विवश होकर अकबर के दरबार में आ चुके थे, पर स्वधर्म और स्वजाति का अभिमान उनके मन से गया नहीं था । इसीलिए वे अकबर के सामने कहा करते थे कि तुमने और सब राजपूतों को अपने वश में कर लिया है, पर राणा प्रताप जैसे 'हिन्दुआना सूरज' को जब तक अपने वश में नहीं कर सकते, तब तक तुम असली 'शहंशाह' नहीं कहला सकते ।

राणा प्रताप प्रतीक है स्वधर्म और स्वजाति की रक्षा के लिए सर्वस्व होम देने वाली प्रणवीरता का । स्वतंत्रता के लिए त्याग और बलिदान की इस दुर्लभ भावना को लक्ष्य करके ही कवि ने लिखा था :

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ो राणा प्रताप ।

अकबर सूतो ओंध के, जाण सिराणे सांप ॥

—ओ मां ! राणा प्रताप जैसे पुत्र को जन्म दे, जिसे अपने सिर की ओर सांप समझ कर सोते-सोते अकबर चौंककर उठ खड़ा होता है ।

राणा प्रताप और हल्दीघाटी का वर्णन करके न जाने कितने कवि अपनी

## ६६ □ फिर इस अन्दाज से बहार आई

लेखनी और वाणी को घन्य कर चुके हैं। कविवर श्यामनारायण पाण्डेय ने हल्दी-धाटी के युद्ध का जैसा जीवन्त वर्णन किया है उसका एक ही उदाहरण पर्याप्त है :

जब रुष्ड गिरे गजमुष्ड गिरे कट-कट अवनी पर शुष्ड गिरे ।

लड़ते-लड़ते श्रीर भुष्ड गिरे भू पर हय विकल वितुष्ड गिरे ॥

हल्दीधाटी के इस चतुःशती वर्ष के उपलक्ष्य में राजस्थानी भाषा के प्रसिद्ध कवि कन्हैयालाल सेठिया की इस कविता से प्रसंग को समाप्त करें :

जब याद करूँ हल्दीधाटी नैणां में रगत उतर आवे ।

सुख दुख को साथी चेतकड़ो सूती सी हूक जगा जावे ॥

## सुनहु विटप ! हम फूल हैं तिहारे

वर्षमान महावीर और उनका शिष्य गोशालक कहीं जा रहे थे । रास्ते में एक पौधे पर उनकी नजर पड़ी । गोशालक ने पूछा—“स्वामिन् ! यह बताइए कि यह पौधा जीवित रहेगा या नहीं, इस पर फूल आएंगे या नहीं ?

महावीर आंखें बन्द करके खड़े हो गए । गोशालक ने कहा—“मैं आपसे इस सामने वाले पौधे के बारे में पूछ रहा हूँ । आप आंख बन्द करके सोचने क्या लगे ?”

महावीर ने आंखें खोलकर जबाब दिया—“यह पौधा जीवित रहेगा, इसमें फूल आएंगे ।”

गोशालक ने पौधे को उखाड़कर फेंक दिया और हँसने लगा । देखें, अब यह पौधा कैसे जीवित रहेगा । फिर गुरु और शिष्य दोनों अपने रास्ते पर आगे बढ़ गए ।

इस बीच खूब वर्षा हुई । गुरु शिष्य भी जिस गांव में टिके थे, उसके बाहर नहीं निकल सके । एक सप्ताह बाद जब दोनों वापस उसी रास्ते से लौटे तो उन्होंने देखा कि जिस पौधे को गोशालक ने उखाड़कर फेंक दिया था, वह किर अंकुरित हो गया है । उसे देखकर महावीर मुस्कराए । गोशालक हैरान था कि यह सब कैसे हो गया । बात सामान्य थी—उस पौधे की जड़ का जो हिस्सा जमीन की कोख में चढ़ गया था, जल का सहारा पाकर वह उग आया ।

गोशालक ने ताव में आकर कहा—“अच्छा, बताइए कि अब यह पौधा आगे जीवित रहेगा या नहीं ?” महावीर गोशालक का भाव समझ गए और बोले—“मैंने जो पहले कहा था, वही अब भी कहता हूँ—यह पौधा जीवित रहेगा । तुम इसको उखाड़कर फिर फेंक सकते हो, नहीं भी फेंको, यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है । मैंने जो कहा था—वह तुम्हारी इच्छा-अनिच्छा को देखकर नहीं कहा था । मैंने आंख बन्द करके इस पौधे की आंतरिक जीवनी-शक्ति की जांच करके कहा था कि यह पौधा जीवित रहेगा, अर्थात् इसमें जीवित रहने की शक्ति है, सम्भावना है । तुम्हारा इसे उखाड़कर फेंक देना या न फेंकना बाहरी क्रिया है, इसलिए वह गौण है, पौधे की आंतरिक जीवनी-शक्ति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं ।”

उस पौधे को फिर उखाड़ने की हिम्मत गोशालक की नहीं हुई ।

पहली बार जाते समय गोशालक मुस्करा रहा था, इस बार वापसी में महावीर मुस्करा रहे थे ।

जहां तक जीवनी शक्ति का प्रश्न है, वैज्ञानिकों की आधुनिक खोज के अनुसार मनुष्य में और वृक्ष में विशेष अन्तर नहीं है। श्रीमद्भगवद् गीता में तो मनुष्य की तुलना ही वृक्ष से की गई है। मनुष्य ही क्यों, पूरे संसार को वृक्ष से उपमा देकर विष्णु और ब्रह्माण्ड की एकता के वैदिक सिद्धांत की विवेचना की गई है। भगवान् कृष्ण कहते हैं :

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।

यह मनुष्य (या यह संसार) ऐसा अश्वस्थ का पेड़ है जिसकी जड़ ऊपर को है और शाखाएं नीचे की ओर हैं। एक तरह से वृक्ष उलटा मनुष्य है और मनुष्य उलटा वृक्ष है।

प्लेटो ने और टिमेझ्यस ने मनुष्य को 'स्वर्गिक वनस्पति' कहा है। वृहदा-रण्यक उपनिषद् में मनुष्य और वृक्ष के रूपक को चरम तक पहुंचाते हुए लिखा है :

जैसे एक वृक्ष होता है, ठीक वैसा ही मनुष्य होता है। मनुष्य के बाल होते हैं, वृक्ष के पत्ते होते हैं। मनुष्य की खाल होती है, वृक्ष की छाल होती है। चोट लगने पर मनुष्य के शरीर से रक्त निकलता है, वृक्ष से लेस निकलता है। मनुष्य में मांस होता है, वृक्ष में गूदा या अन्दर की छाल होती है। मनुष्य की नस-नाड़ियाँ होती हैं, वृक्ष के रेशे होते हैं। मनुष्य में हड्डी होती है, वृक्ष में लकड़ी होती है। मनुष्य बीज (बीर्य) से पैदा होता है, वैसे ही वृक्ष भी बीज से पैदा होता है। यदि किसी वृक्ष को जड़ से उखाड़ दिया जाए तो वह नहीं उगेगा। पर जब मनुष्य मृत्यु के द्वारा कटकर गिर पड़ता है तो फिर वह कहां से उग आता है?

पद्म पुराण, और स्कन्ध पुराण में वृक्षों को देवताओं का अधिष्ठान कहा गया है। वरुण देवता का निवास खंबूर के पेड़ में, मेघ का निवास जायुन में और ब्रह्मा विष्णु-शिव का निवास अश्वत्थ में माना गया है। इन देवताओं का इन्हीं वृक्षों के साथ सम्बन्ध क्यों है, इसका विज्ञानसम्मत उत्तर खोज का विषय है।

अश्वत्थ (वट या पीपल) वृक्ष की एक विशेषता है। उसकी शाखाएं भी जड़ का काम करती हैं और उसकी जटाओं का विस्तार इतना अविक हो जाता है कि सेना की पूरी टुकड़ी उसके नीचे विश्राम कर सकती है। अड्यार (मद्रास) में, यियो-सोफिकल सोसायटी का जहां मुस्लिम कार्यालय है, वहां स्थित वट वृक्ष का वेरा ६,००० गज है और उसकी जटाएं इस भाँति जमीन में गई हुई हैं कि वह अनायास सौ स्तम्भों का प्राकृतिक सभागार बन गया है। इस वृक्ष के नीचे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो चुके हैं जिनमें देश-विदेश के सैकड़ों प्रतिनिधियों ने भाग लिया है। यह वट वृक्ष ५०० वर्ष पुराना है।

कलकत्ता के वनस्पति-उद्यान का वट-वृक्ष अड्यार के इस वृक्ष से भी कहीं बड़ा और कहीं पुराना है। वह तो एक वृक्ष ही अपने आप में पूरा बाग है—जिसमें पथ, बीथी और कक्ष स्वयं बनते हैं। इसी तरह गया का वह बोधिवृक्ष, जिसके

नीचे भगवान बुद्ध ने बोध प्राप्त किया था और जिसकी एक शाखा महाराज अशोक के पुत्र और पत्नी—महेन्द्र और संघमित्रा—श्रीलंका ले गए थे, संसार के प्राचीनतम वृक्षों में गिने जाते हैं।

जैसे पौराणिक और ऐतिहासिक आख्यान भारत में वृक्षों के साथ जुड़े हैं, वैसे संसार में शायद ही कहीं हों। जहां तक भारतीय साहित्य का सम्बन्ध है, वह भी वृक्षों के वर्णनों से भरा पड़ा है। कनिष्ठ के आध्यात्मिक उपदेष्टा अश्वघोष ने और महाकवि कालिदास ने भारतीय वृक्षों का अनोखा वर्णन किया है।

संस्कृत-साहित्य के कवियों की यह मान्यता है कि सुन्दरियों के पदाघात से अशोक पुष्पित होता है, कुरबक आर्लिंगन से प्रियंगु स्पर्श से, नेमरू गान से, तिलक या पुन्नाग दृष्टिपात से, मन्दारहंसी मजाक से, चम्पा मृदु-स्मित से, बकुल मुंह के कुल्ले से और कर्णिकार (अमलतास) सुन्दरियों के नृत्य से पुष्पित हो उठता है। कवियों की इस मान्यता में भी वैज्ञानिक सत्य कितना है, कहना कठिन है, पर कल्पना की कमनीयता के साथ वृक्षों के प्रति रागात्मक सम्बन्ध की निशानी तो यह है ही।

आजकल वनस्पति जगत् में भी विदेशी पौधों की घुसपैठ बढ़ती जा रही है और लेंटाना, प्रिकली पियर, मैक्सिकन पोपी और उत्तरी तथा दक्षिणी अमरीका और कुछ अन्य दूरस्थ देशों के पौधों ने भारत में काफी जगह छेक ली है। आजकल शहरों के नीप, इमली और पीपल जैसे पेड़ों की बेकट्री और युक्लिप्टस, पाम, क्लीनहेविया, डेलोनिक्सरेजिया, केसिया, लैंगर स्टोमिया स्पेसियोसा और मिलिंगटोनिया जैसे विदेशी वृक्षों के प्रति मोह बढ़ता जा रहा है।

पिछले दिनों विलायती कीकर के बारे में चिकित्सकों ने यह खोज की थी कि उसके पराग से दमे और श्वास की बीमारी फैलती है। पर राजधानी में उसको लगाने के उत्साह में कभी नहीं आई। फिर भी कुछ भारतीय पौधे ऐसे हैं जिन पर तुलसीदास की यह उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती है :

तुलसी विरचा बाग के सींचे ते कुम्हलार्हि ।

राम भरोसे जो रहे पर्वत पै हरियार्हि ॥

आंध्र प्रदेश में जो आदेश दिया गया है कि बड़ा आौदोगिक कारखाना अपने यहां पेड़ लगाने के लिए सौ आदमी अलग से नहीं रखेगा, उस पर जुर्माना होगा। महाराष्ट्र सरकार ने अवैव रूप से पेड़ काटने को जुर्म करार दिया है। और उधर 'हम-दो, हमारे-दो' के अर्थ में इजाफा करके कहा जा रहा है कि हरेक परिवार को कम से कम दो पौधे अवश्य लगाने चाहिए। हां, वच्चे पैदा करने में दो की सीमा का अतिक्रमण भले ही अवांछनीय हो, पर पेड़ लगाने में दो की सीमा का अतिक्रमण किया जा सकता है।

१ जुलाई से प्रारम्भ होने वाले वृक्षारोपण सप्ताह का स्वागत रहीम के इस

७० — फिर इस अन्दाज से बहार आई

पद से करते हुए प्रसंग समाप्त करें :

मुनहु विटप ! हम फूल हैं तिहारे  
जो पै रात्सो पास सोभा चौगुनी बढ़ावेंगे ।  
तजिहो हरख, बिरख है न चारों कछु  
जहाँ जहाँ जैहें तहाँ दूनी छवि पावेंगे ।  
सुरन पै चढ़ेंगे वा नरन पै चढ़ेंगे हम  
मुकावि रहीम हाथ हाथ ही विकावेंगे ।  
देश में रहेंगे या विदेश में रहेंगे  
काहू भेष में रहेंगे पै तिहारे ही कहावेंगे ॥

## ऋथ फल प्रकरणम्

क्षुधा से पीड़ित एक तोते ने चारों तरफ न ज़र दौड़ाई, तो कुछ दूर उसे नारियल का पेड़ दिखाई दिया—इतना ऊंचा पेड़, उस पर लगे इतने बड़े-बड़े फल। देखते ही उसका चित्त प्रसन्न हो गया। इधर खेत में धान की फसल पककर तैयार थी। पर उसने धान की इस पकी फसल वाले खेत को छोड़कर नारियल की ओर उड़ान भरी और वहाँ पहुंचकर उत्सुकतापूर्वक नारियल के फल पर जोर से चोंच मारी, तो उसकी इच्छा तो पूरी हुई नहीं, उल्टे चोंच और टूट गई।

संस्कृत के एक कवि ने इसी बात को यों श्लोकबद्ध किया है :

उच्चैरेष तसः फलं च विषुलं दृष्ट्वैव हृष्टः शुकः ।  
पश्वं शालिवनं विहाय जड्धीः तं नारिकेलं गतः ॥  
तत्रारुद्ध बुभुक्षितेन भनसा यत्नः कृतो भेदने ।  
वाञ्छा तस्य न केवलं विगलिता चञ्चुर्गता चूर्णताम् ॥

इसी बात को थोड़े हेर-फेर के साथ गिरिधर कविराय ने यों लिखा है :

दाढ़िम के घोखे गयो सुवा नारियल खान ।  
खान न पायो नेक कछु फिर लागो पछतान ॥  
फिर लागो पछतान बुद्धि अपनी को रोयो ।  
निर्गुणियन के साथ बैठि अपनो गुण खोयो ॥  
कह गिरिधर कविराय सुनो रे मेरे नोखे ।  
गयो झटाका टूटि चोंच दाढ़िम के घोखे ॥

एक प्रसंग का उल्लेख महाकवि भर्तृहरि ने भी किया है :

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणः सन्तापितो मस्तके ।  
गच्छन्देशमनातपं विधि-वशात्तालस्य भूलं गतः ॥  
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्न सशब्दं शिरः ।  
प्रायो गच्छति यत्र भाग्य-रहितस्तत्रैव यान्त्यापद ॥

—एक गंजे को जब सूरज की किरण अपने ताप के कारण खूब सताने लगीं तो किसी छाया वाले स्थान की तलाश करता हुआ वह ताड़ वृक्ष के नीचे पहुंच गया। किस्मत की बात देखो—कि वहाँ भी बड़ा सारा ताड़कल घड़ाम से उसके सिर पर गिरा। प्रायः भाग्यहीन व्यक्ति जहाँ भी जाता है, मुसीबत उसका पीछा करती हुई वहीं पहुंच जाती है।

अन्योक्ति के ढंग से बात कहने का रिवाज कवियों में आम है और इसके लिए कवि-गण अक्सर वृक्ष, फल, पशु, पक्षी, मेघ आदि को अपना उपजीव्य बनाकर अपने मन की बात कहते रहते हैं। पर चन्द्रमा और मंगल ग्रह पर जाकर वस्ती बसाने को लालायित आज के मानव के लिए और सब चीजों के लिए तो समय है, पर कविता का रस लेने के लिए उसके पास समय का नितन्त्र अभाव है।

फलों और वृक्षों के सम्बन्धों में अन्योक्ति की चर्चा क्यों करते हो, वृक्षारोपण सप्ताह में सीधे वृक्ष की बात करो न! और आम के पेड़ गिनने के बजाय आम खाना सदा दुनियादारी का और नफे का सौदा होता है, इसलिए सीधे फलों की बात करो न!

जिसने भी ककड़ी को 'लैला की अंगुलियों' और मजनू की 'पसलियों' का खिताब दिया, उसकी नाजुक खयाली पर सचमुच ही रसिक जन न्यौछावर हुए बिना नहीं रहेंगे। इस मुहावरे ने लखनऊ नजाकत को जिस आसमान पर पहुंचा दिया है, उसे और प्रदेशों के लिए छू पाना भी मुश्किल है, बस 'लखनऊ हम पर फिदा और हम फिदाए लखनऊ' वाले ही बाजी मार ले जाएंगे।

एक बार किसी सज्जन ने लखनऊ स्टेशन पर 'लैला की अंगुलियाँ(ककड़ियाँ) खरीदीं और जब गाड़ी चल पड़ी तो बड़ी नफासत से उन्हें छील-छीलकर खाने लगे। एक दूसरे सज्जन भी लखनऊ से ही गाड़ी पर सवार हुए थे। जब उन्होंने यह आलम देखा तो इसका जवाब देने के लिए उन्होंने अपनी डलिया में से बरफी निकाली और उसे चाकू से छील-छीलकर खाने लगे। जब और सवारियों ने यह नहले पर दहला देखा तो इस मूक व्यंग्य पर वे विना कहकहा लगाए नहीं रह सके और एक मुसाफिर ने तो छूटते ही कहा—'मान गए, उस्ताद ! मान गए !'

जब ककड़ी सामने आई तो खरबूजा पीछे क्यों रहेगा। यों भी संस्कृत में ककड़ी को 'कर्कास्ति' और खरबूजे को 'उबर्हि' कहते हैं। कई उलमाओं ने बड़े इतनी मीनान से लिखी है कि खरबूजा पहले भारत में नहीं होता था और वह अकबर के समय भारत में आया। पर अकबर के दादा-बाबा ने खुद अपनी आत्मकथा में जमना पार के बढ़िया खरबूजों का न केवल जिक्र किया है, बल्कि खुरासानी खरबूजे से उसकी तुलना की है।

इतना ही क्यों, वेद के मृत्युंजय महामंत्र में खरबूजे का जिक्र आया है :

ऋग्म्बकं यजामहे सुगर्ण्धं पुष्टिवर्धनम् ।

उवर्खक्षिव बन्धनात्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

अब कोई दानिशमन्द यह तो मनाने को तैयार नहीं होगा कि वेदों का निर्माण अकबर के बाद हुआ है। यहीं यह भी याद आ रहा है कि महाकवि सूरदास ने भी 'खरबूजा' शब्द का प्रयोग किया है :

छोलि धरे खरबूजों केरा । शीतल वास करत अति धेरा ।

पर सूरदास तो अकबर के सम्कालीन थे, इसलिए वे 'खरबूजे' का प्रयोग क्यों

न करते ! हाँ, 'खरबूजा' शब्द बहुत प्राचीन नहीं लगता । हो सकता है, इस शब्द का ही प्रयोग अकबर के समय से प्रारम्भ हुआ हो । पर पण्डित लोग यहाँ भी हार मानने वाले नहीं हैं । उनका कहना है कि 'खरबूजा शब्द संस्कृत से निकला है' । वे इसका व्युत्पत्तिक्रम यों बताते हैं—उर्बाह उर्बास्क, कर्काह-कर्काहक, खर्बास्क-खर्बास्क-खरबूजा ।

आजकल सब ज्ञेयों में पश्चिम को ही प्रमाण मानने की परम्परा है, इसलिए वनस्पति-विज्ञान में भी उसीकी धूम है । पर प्राचीन भारत में भी इस विषय में काफी खोजबीन हुई थी, इसकी ओर कोई व्यान नहीं देता । वृक्षों के विज्ञान के सम्बन्ध में 'वृक्षायुर्वेद' एक अलग ग्रन्थ ही है । बगीचा लगाने की कला के सम्बन्ध में 'उपवन विनोद' नामक ग्रन्थ है । फिर 'विष्णुधर्मोत्तर', 'वृहत्संहिता', 'गोरक्षसंहिता' और 'पराशर संहिता' आदि ग्रन्थों में वनस्पति-विज्ञान सम्बन्धी जो कुछ चर्चा है, उसकी भी खोज कहाँ की जा रही है । 'उपवन विनोद' में एक पूरा प्रकरण है जिसमें फलों और फूलों के रंग, गन्ध, आकार आदि में यथाभिलिखित परिवर्तन करने के कुछ प्रयोग दिये गए हैं ।

उदाहरणार्थ, एक प्रयोग है—यदि मुलहठी, शर्करा, कुठ और महुवे के पुष्टों को कूटकर एक लड्डू सा बनाकर उसे पौधे की जड़ पर जमा दिया जाए तो उस वृक्ष के फल बिना गुठली के या छोटी गुठली के होंगे । इसी प्रकार के और अनेक प्रयोग हैं । इस 'उपवन विनोद' की एक हस्तलिखित प्रति उदयपुर के 'सरस्वती भंडार' (पुस्तकालय) में सुरक्षित है ।

हिसार की एक महिला ने अपने घर के गमले में आम के पौधे को दूध के बर्तन को धोवन से सीच-सीचकर छह मास में ही उससे फल प्राप्त कर लिए और लुधियाना के कृषि विश्वविद्यालय ने बिना बीज का अंगूर उगाने में सफलता प्राप्त कर ली । इन समाचारों से उत्साहित होकर ही आज का यह फल-प्रकरण लिखने की प्रेरणा निली है

पर वही बात—'आम के पेड़ गिनने' के सांख्यशास्त्र में आम का स्वाद कहाँ, स्वाद तो आम खाने में ही है ।

## अलकापुरी से लौट आओ, हे मेघ !

एक बार श्रावस्ती में अकाल पड़ा । भूखे नर-नारी चारों तरफ हाहाकार करते थूमने लगे । उनकी संख्या भी कम नहीं थी । भगवान बुद्ध का हृदय उन दीनों की दशा देखकर करुणा से भर उठा । अपने शिष्यों को बुलाकर उन्होंने पूछा—“तुममें से इन क्षुधातों को भोजन देने का दायित्व कौन लेने को तैयार है ?” शिष्य-मण्डली में से सबकी नजर श्रेष्ठि-प्रवर रत्नाकर शाह पर पड़ी । रत्नाकर शाह ने कहा—“इनको भोजन खिलाने के लिए जितना धन चाहिए उतना धन मेरी सारी चल-अचल सम्पत्ति को बेचकर भी प्राप्त नहीं किया जा सकता ।”

फिर सबकी दृष्टि सेनापति पर पड़ी । राजा के सेनापति ने कहा—“मेरी सारी सेना भी इतने लोगों के भोजन की व्यवस्था नहीं कर सकती ।” तब हजारों बीघा भूमि के स्वामी धर्मपाल की ओर सबकी आंखें मुड़ गईं । धर्मपाल ने गहरा सांस छोड़ते हुए कहा—“अनावृष्टि के कारण मेरे सारे खेत सूख गए । मुझे यही चिन्ता सता रही है कि राजा का कर कैसे चुकाऊंगा ।”

तब एक भिखारी-कन्या खड़ी हुई । उसने सबका अभिवादन किया और संकोच-पूर्वक बोली—“इन क्षुधातों के भोजन की व्यवस्था मैं करूँगी ।” सब चकित होकर सुप्रिया नाम की इस भिखारी-कन्या की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखने लगे ।

भगवान बुद्ध ने गद्गद कण्ठ से पूछा—“इतना बड़ा उत्तरदायित्व तू कैसे पूरा करेगी, बेटी ?” सुप्रिया ने कहा—“यहां उपस्थित जनों में मैं सबसे गरीब हूँ । मेरी गरीबी और मेरी अर्किचनता ही मेरी सबसे बड़ी शक्ति है । जन-जन के घर में मेरा भज्जार भरा है ।”

जो शक्ति धन में, सेना में, या प्रभुता ऐश्वर्य में नहीं वह गरीबी में है—यह एक नया जीवन-मूल्य है । गरीब आदमी अपने को शक्तिहीन अकारण ही मान चैठता है । एक बार उसे अपनी गरीबी की शक्ति का आभास भर हो जाए, तो फिर उससे बढ़कर शक्तिशाली और कुछ ठहरता नहीं ।

दुनिया भर के अभावग्रस्तों को [संगठित करने के नारे में जो बल है, वह इस गरीबी की शक्ति के अहसास का ही सूचक है । अविकसित राष्ट्रों में जो नया आत्म-विश्वास इस समय उभरकर सामने आ रहा है, वह इसी शक्ति के विस्कोट का प्रतीक है । निर्गुट देशों को विभिन्न शक्ति-गुट अपने-अपने खेमे में खींचने के प्रयत्न करते रहे हैं, पर उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी शोषण के शिकार बने इन निर्गुट

राष्ट्रों ने अब अपनी शक्ति को पहचानना प्रारम्भ कर दिया है। इनकी सांझी गरीबी ही इनकी सांझी शक्ति है।

शक्तिशाली राष्ट्रों का निर्गुट और गरीब राष्ट्रों के प्रति जैसा व्यवहार रहता है, उसे देखकर संस्कृत के कवि की एक अन्योक्ति याद आती है :

नभसि निरवलम्बे सीदता दीर्घकालं

त्वदभिभुखनिषयोत्तान चञ्चू पुटेन ।

जलधर जलधारा दूरतस्तावदास्तां

ध्वनिरपि मधुरस्ते न श्रुतश्चातकेन ॥

—चिरकाल से आकाश में बिना किसी सहारे के खड़े और तेरी ओर अपनी चौंच खोलकर आशा भरी दृष्टि लगाए चातक ने, हे जलधर, तेरे जल की धाराओं की तो बात ही बया, आज तक तेरी मधुर ध्वनि भी नहीं सुनी।

एक और कवि का भी अनुरोध सुन लीजिए जिसे आप आसानी से बड़े राष्ट्रों के प्रति संकेतित समझ सकते हैं :

मुंच-मुंच सलिलं दयानिधे नास्ति नास्ति समयो विलंबते ।

अद्य चातक कुते मृते पुनः वारि वारिधर कि करिष्यसि ॥

—हे दयानिधान बादल ! जल्दी से जल्दी पानी बरसा, अब विलम्ब करने का समय नहीं रहा। यदि आज यह सारी चातक-मण्डली प्राण-विहीन हो गई तो फिर तेरा पानी भी किस काम आएगा ?

एक कवि ने तो बाकायदा जैसे चेतावनी ही दे दी है :

वितर वारिद वारि दवातुरे चिरपिपासित चातक पोतके ।

प्रचलिते मरुति क्षणमन्यथा क्व नु भवान् क्व पयः क्व च चातकः ।

—हे मेघ ! दावानल से पीड़ित और चिरकाल से प्यासे इस चातक-शिशु पर कुछ तो दया करके पानी दे। नहीं तो जरा हवा का रुख बदलने पर तू कहाँ, पानी कहाँ और विचारा चातक कहाँ ?

एक आश्चर्य की बात है। संस्कृत के कवियों की इस प्रकार की अन्योक्ति-प्रधान रचनाओं में जहाँ चातक और मेघ के बहाने से निराशा, अनुरोध और चेतावनी का भलक मिलती है, वहाँ अंग्रेजी के कवियों में वैसा निराशा का भाव दृष्टिगोचर नहीं होता। वर्द्धस्वर्य ने बेशक मेघ को लक्ष्य कर कहा है :

पहाड़ियों और घाटियों के ऊपर

तैरते हुए एकाकी बादल की तरह

मैं भी अकेला भटकता रहा ।

पर लौंगफैलो की रचना में स्पष्ट आश्वासन और आशा का सन्देश है :

ओ मेरे उदास दिल ! तू स्थिर हो, और पछताना छोड़ दे ।

बादलों के पीछे सूरज अब भी चमक रहा है ॥

इसी प्रकार शैले की भी मेघ से सम्बद्ध अन्योक्ति कम उत्साहवर्धक नहीं है :

नदियों और समुद्रों से पानी पीकर मैं प्यासे पादपों पर ताजा जल-  
सीकरों की बौछार करता हूँ, जब वृक्षों के पत्ते दुपहरिया में दिवास्वप्न में  
मग्न होते हैं तब मैं उन पर हल्की-हल्की छाया कर देता हूँ।

आषाढ़ समाप्त हो गया। कवि कालिदास ने अपने अद्भुत गीति-काव्य मेघ-  
दूत में चाहे 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' लिखा हो, चाहे 'आषाढ़स्य प्रशमदिवसे' लिखा  
हो, अब पूरा आषाढ़ समाप्त होने पर प्रथम और अंतिम (प्रशम) दिवस की बहस  
व्यर्थ हो गई है। पर व्यर्थ नहीं जाना चाहिए वह क्रन्दन जो इस समय फांस और  
ब्रिटेन में पड़ रही भयंकर गर्मी के कारण पूर्वी यूरोप और दक्षिण अमरीका की ओर  
भी प्रसृत होता जा रहा है।

पूर्व-मानसून की थोड़ी सी झलक दिखाकर, हे मेघ देवता ! तुम अम्बर-तल  
से ऐसे गायब हो गए कि सारे आषाढ़ भर इस देवमातृक देश के गरीब किसान चातक  
से भी अधिक उत्कण्ठा-न्पूर्वक तुम्हारी और निहारते रहे, पर तुम नहीं पसीजे। विचारे  
किसान की खरीफ की फसल चौपट होने के आसार पैदा हो गए और केन्द्रीय कृषिमंत्री  
को राज्यों के कृषि मंत्रियों से कहना पड़ा कि भारत के किसान को बादलों के भरोसे  
नहीं छोड़ा जा सकता, सिंचाई की अन्य व्यवस्था करनी ही होगी।

तो हे मेघ ! क्या तुम उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हो जब तुमको तुम्हारे  
सिंचाई के इस महत्वपूर्ण पोर्टफोलियो और पद से सर्वथा मुक्त कर दिया जाएगा ?  
पर तुम जानते हो कि इस देश में ऐसी सम्भावना नहीं है। अभी तो अनेक दशकों  
तक भारत के किसान को तुम्हारे ही भरोसे रहना होगा और असली कृषि मंत्री  
तुम ही बने रहोगे। इसीलिए तुम्हारे इतने नखरे हैं।

देखो, सावन आ गया है। तुम्हारे कर्तव्य-च्युत होने से भारत पर कौसी भयंकर  
मुसीबत आ सकती है, इसका भी ज़रा स्थाल करो। अब तो जोश मलीहावादी की  
इस उन्निति को सार्थक कर दो :

लचके, झूमे, गाए जवानी लय की देवी, सूर की राती  
खन-खन बोले कंगन धानी रिमझिम-रिमझिम बरसे पानी ।  
वन-वन गूंजे भोर छन-छन बोले हल्की पाथल  
दाता ऐसी रुत भी आए छाए घटा घनघोर ॥

लगता है—कालिदास के यक्ष ने तुमको अपना दूत बनाकर अलकापुरी में  
अपनी प्रिया के पास जो भेजा था, सो तुम उस यक्ष-पत्नी के सौन्दर्य-जाल में उलझ  
कर वहीं अलकापुरी में ही रम गए और तुमको घराघाम के इन गरीब निवासियों की  
सुष नहीं रही जिनके जीवन का आधार ही तुम हो ।

अलकापुरी से लौट आओ, हे मेघ !

## खेलन में को का को गुसैयां

जब लायड जार्ज ब्रिटेन के प्रधान मंत्री थे, तब की बात है।

एक बार वे वेल्स के दौरे पर गए। दौरे के सिलसिले में एक रात वे ऐसे स्थान पर पहुंच गए जहां एक भी होटल न था। विवश होकर वे सामने खड़ी एक बड़ी इमारत के फाटक पर पहुंचे और वहां लगी घंटी का बटन उन्होंने दबा दिया।

तुरन्त एक वर्दीधारी व्यक्ति ने दरवाजा खोला। लायड जार्ज ने उसके कुछ पूछने से पहले ही कहा : “महाशय ! मैं रातभर ठहरना चाहता हूँ।” उस व्यक्ति ने चकित होकर उत्तर दिया : “यहां ? आप जानते हैं—यह कौनसी जगह है ? यह तो पागलखाना है !”

लायड जार्ज ने बिना हतप्रभ हुए कहा : “हुआ करे ! मुझे तो रात को सोने भर की जगह चाहिए। और हां, तुम जानते हो, मैं कौन हूँ—मैं ब्रिटेन का प्रधान मंत्री लायड जार्ज हूँ।”

वार्डर कुछ सकपकाया और उनको रास्ता देता हुआ बोला : “तो आप निस्संकोच आ सकते हैं, आपके ठहरने की व्यवस्था हो जाएंगी। यहां पांच लायड जार्ज पहले से ही विद्यमान हैं।”

राजनीति और राजनीतिज्ञों के बारे में लोगों ने न जाने किस-किस तरह की बातें कही हैं, पर उक्त घटना से लगता है कि राजनीति का कहीं न कहीं पागलपन से सम्बन्ध अवश्य है। इसमें घबराने की बात इसलिए भी नहीं है कि स्वयं जेक्स-पियर ने कवि, प्रेमी और पागल को एक ही कोटि में रखा है। कभी भर्तृहरि ने लिखा था :

सत्यानूता पर्ष्णा प्रियवादिनी च  
हिला दयालुरपि चार्यपरा वदान्या ।  
नित्य व्यया प्रन्तु नित्यघनागमा च  
वारांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥

—राजनीति कभी सत्य का आश्रय लेती है, कभी झूठ का, कभी वह कठोर बन जाती है और कभी मधुरभाषी, कभी हिंसक, कभी दयालु, कभी कृपण, कभी उदार, कभी व्यय-प्रधान और कभी आय प्रधान। इस प्रकार नानारूप धारण करने वाली राजनीति साक्षात् वारांगना है।

राजनीति के साथ वारांगना की यह तुलना उस युग की समझती चाहिए जब

समाज का भद्रवर्ग कला और संस्कृति सीखने के लिए वारांगनाओं की शरण लिया करता था। तब शायद राजनीति की वारांगना से तुलना करने पर भी कला और संस्कृति को राजनीति से अलग रखने का एक नैतिक बोध भी हो रहा हो। पर अब तो राजनीति ऐसी सर्वव्यापक हो गई है कि ब्रह्माण्ड का कोई कोना भले ही ऐसा निकल आए जहाँ सृष्टिकर्ता का प्रवेश न हो, पर मानव-जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं निकल सकता जो राजनीति से अछूता हो।

अब भला खेल खेल है, राजनीति से उसका क्या वास्ता ! पर मार्णियल में ओलिम्पिक के खेल सही सलामत शुरू हो जाने पर भी आज सारा संसार इस बात का साक्षी है कि खेल भी बिना राजनीति के नहीं चल सकते। ओलिम्पिक खेलों के जन्मदाता को भले ही यह इरादा रहा हो कि इन खेलों के माध्यम से एक ऐसा मंच तैयार किया जाए जहाँ लोग रंग, जाति तथा राजनीति सम्बन्धी सब वाद-विवादों की भूलकर विश्ववर्ष्यत्व और पारस्परिक सौहार्द की भावना से एकत्र हों। पर ओलिम्पिक खेलों के जन्मदाता के जीवनकाल में ही राजनीति ने इस मूल भावना में दरार पैदा करं दी और विभिन्न राष्ट्रों की ओर से जोड़-तोड़ प्रारम्भ हो गई।

इस युग में साम्यवादी चीन ने पिंगपोंग के माध्यम से राजनीतिक शतरंज का ऐसां दाव खेला कि विश्व-राजनीति के समस्त समीकरण बदल गए। इतना ही क्यों, राजनीति की एक विधा ही बन गई जिसे ‘पिंगपोंग राजनीति’ का नाम दिया गया।

राजनीतिज्ञों के समाज में एक विनोद प्रचलित है। एक विदेशी जब चीन गया तो एक दिन उसे बाजार में चलते हुए अचानक खांसी के साथ खसार आ गया। वह खसार थूकने की जगह तलाश कर ही रहा था कि किसी सम्भ्रान्त चीनी ने उसे वहाँ सड़क पर थूकने से रोकते हुए कहा कि मेरे साथ आइए, मैं आपको थूकने की जगह बताता हूँ। विदेशी उस चीनी के साथ हो लिया। वह चीनी उसे एक अत्यन्त सुसज्जित आलीशान इमारत में ले गया जिसमें फर्श पर कीमती कालीन बिछे हुए थे। उस विदेशी से चीनी ने कहा कि आप इस जगह थूक सकते हैं। विदेशी ने चकित होते हुए कहा—“तुम चीनी लोगों की कलाप्रियता की भी सीमा नहीं, तुमने थूकने के लिए भी इतनी शानदार जगह बना रखी है।” चीनी ने घीरे से कहा—“हाँ, यह अमरीकी दूतावास है।”

पर यह विनोद पिंगपोंग राजनीति से पहले का है, तब का है—जब चीन के बच्चों को अमरीका के राष्ट्रपति के पुतले पर निशानेबाजी और चांदमारी का अभ्यास कराया जाता था। इस पिंगपोंग राजनीति ने अमरीका को चीन का ऐसा दोस्त बना दिया कि अब ओलिम्पिक में कनाडा द्वारा ताइवान के खिलाड़ियों के प्रवेश पर रोक लगाने की मांग पर चीन की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए ही अमरीका ने ओलिम्पिक के बहिष्कार तक की घमकी दे डाली। इस घमकी से प्रभावित होकर कनाडा ने ताइवान के दल को कुछ रियायतें देना स्वीकार किया और ताइवान के

खिलाड़ियों ने उन रियायतों से आश्वस्त होकर ओलिम्पिक में भाग लेना भी मान लिया। पर ओलिम्पिक खेलों के श्रीगणेश की सूचक ज्योति के प्रज्वलित होते ही बिसात फिर बदल गई और ताइवान के खिलाड़ियों ने ओलिम्पिक में भाग लेने से इन्कार कर दिया।

कुछ अफ्रीकी देशों ने ओलिम्पिक खेलों का इस आधार पर बहिष्कार कर दिया कि न्यूजीलैण्ड के खिलाड़ियों को अनुमति क्यों दी गई जबकि रंगभेद के समर्थक दलित अफ्रीका में उसके खिलाड़ी रगबी खेलने गए हुए हैं। अफ्रीकी देशों का यह विरोध केवल वाचिक नहीं रहा, बल्कि इन देशों के जो खिलाड़ी मार्णिट्रियल पहुंच चुके थे वे अपना बोरिया-विस्तर बांधकर वहाँ से वापस हो लिए।

इस प्रकार ओलिम्पिक खेलों के इस विशाल समारोह का—जिसकी गत दो वर्षों से बहुत बड़े पैमाने पर तैयारी चल रही थी और जिस तैयारी पर अरबों रुपया खर्च किया गया है—क्रीडास्थल मार्णिट्रियल, खेल का मैदान क्या हुआ, जैसे बाटरलू का मैदान हो गया।

खेलों के आदर्श तो लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हो सकते हैं—जो महर्षि संदीपन के आश्रम में गरीब ब्राह्मण सुदामा के साथ चाव से विद्या पढ़ते रहे। उसी चाव से वे गांवों के ग्वालबालों के साथ नाना प्रकार के खेल भी खेलते रहे। खेल में क्या ऊच-नीच, क्या छोटा-बड़ा, क्या काला-गोरा। इसी भाव से किसी कवि ने श्रीकृष्ण को लक्ष्य करके कहा था कि तुम हजारों गायों के मालिक होगे तो अपने घर में होगे, खेलों में सब ग्वाल-बाल बराबर हैं:

खेल में को को गुस्सेयां।

—खेल में कौन किसका गोसाई—स्वामी, सब बराबर।

एक प्रसंग याद आ रहा है। नेपाल के राणावंश के संस्थापक राणा जंगबहादुर सन् १८५० में इंग्लैण्ड गए थे। वे पढ़े-लिखे नाममात्र को ही थे और अंग्रेजी से तो सर्वथा कोरे थे। उसी समय महारानी विक्टोरिया के पुत्र (इूँक आफ कनाट) पैदा हुआ था। पुत्र-जन्म की खुशी में जो नृत्योत्सव हुआ उसमें नेपाल के राणा को भी आमंत्रित किया गया। जब लार्ड और लेडियों नाच चुकीं और नृत्य-गान समाप्त हुआ तो महारानी विक्टोरिया ने दुभाषिये की मार्फत राणा से पूछा : ‘हम लोगों का नाच-गान कैसा लगा ?’ राणा ने कहा : ‘बहुत अच्छा ! बहुत भीठा !’ महारानी ने हँसकर दुभाषिये से उछवाया : ‘जनाव ! आप हमारी बोली का एक शब्द भी नहीं समझते, फिर भी कहते हैं कि गाना बहुत भीठा है।’ इस पर राणा ने दुभाषिये से कहा, ‘महारानी से कह दो कि चिड़ियों की बोली भी कोई नहीं समझता, लेकिन यह सभी बता सकते हैं कि कौन चिड़िया भीठा गाती है, कौन नहीं।’

खेल की बोली भी खेल की भावना से ही समझो जा सकती है, राजनीति के दुभाषिये के माध्यम से नहीं।

## मंगलामुखी का अनावरण

चन्द्रमा और चन्द्रमुखी के बर्णन में कवियों ने अपनी प्रतिभा का काफ़ी बड़ा भाग व्यय किया है। संस्कृत के एक कवि की अन्योक्ति दोनों पर समान रूप से लागू होती है :

अहो नक्षत्रराजस्य सामिश्रान विचेष्टितम् ।

यरिक्षीणस्य वक्तव्यं सम्पूर्णस्य सुवृत्तता ॥

—नक्षत्रराज चन्द्रमा की गर्वभरी अदा तो देखो—जब क्षीण होता है तो उसमें कैसा बांकपन रहता है और जब शुक्ल पक्ष के अंतिम दिन पूर्णता को प्राप्त होता है तब कैसा गोलमटोल बन जाता है। एक और कवि ने समुद्र, चन्द्रमा और चन्द्रमुखी—इन सबको एक साथ लपेटते हुए अपनी अनोखी सूझ का परिचय दिया है :

पिनष्टीव तरंगायैः समुद्रः फेनचन्दनम् ।

तदादाय करैरिन्दुः लिम्पतीव दिगंगनाः ॥

—यह समुद्र अपनी तरंगों के अग्रभाग से मानो फेन रूपी चन्दन को घिस रहा है और चन्द्रमा उसे अपने करों (किरणों) से उठाकर दिशा रूपी चन्द्रमुखियों के मुख पर चन्दन का लेप कर रहा है।

पर विज्ञान बड़ा निर्मम है। ज्यों-ज्यों प्रगति के पथ पर अग्रसर होता जाता है, त्यों-त्यों अनेक जादुओं को तोड़ता जाता है। जादू ऐसे—जो मनव्य के मन पर सदियों से हावी रहे, पर विज्ञान के घन की एक चोट पड़ते ही वे चकनाचूर हो गए।

अब से सात साल पहले जब आर्मस्ट्रॉन्ग ने अपने एक साथी के साथ चन्द्रमा के घरातल पर पहली बार कदम रखा तब वैज्ञानिक अपनी इस उपलब्धि पर फूल-कर कुप्पा हो गए। पर हाय रे हतभाग्य कवि ! तेरी तो सारी दुनिया ही उजड़ गई। जब इन चन्द्र-यात्रियों ने बताया कि चन्द्रमा के घरातल पर न वृक्ष है, न वन-स्पति है, न हरियाली है, न पानी है, न कोई प्राणी है, और सारी जमीन ऐसी ऊबड़-खाबड़ है जैसे किसी अरसिक व्यक्ति का हृदय; तब कवि और कविप्रिया दोनों ने अपना माथा पीट लिया। कविप्रिया चन्द्रमुखी चण्डिका बनकर सामने खड़ी हो गई और उसने कवि को चेतावनी दी कि खबरदार ! आगे से कभी मुझे 'चन्द्रमुखी' कहा तो !

वैज्ञानिक जितना निर्मम है, उससे बढ़कर बेह्या है। उसे कवि और कविप्रिया

के हुँख दर्द से क्या लेना-देना ! पहले चन्द्रमा और चन्द्रमुखी के पीछे पड़ा था, अब मंगल और मंगलामुखी के पीछे पड़ा है। अब सब ज्योतिषी दांतों तले अंगुली दबाए देख रहे हैं कि वाइकिंग-१ क्या खबर लाता है। ज्योतिषी लोग कहा करते थे कि मंगल अह 'भूमिसुत' है' लाल रंग का है, और अमुक-अमुक राशि में स्थित होने पर अमुक-अमुक फल प्रदान करता है। मंगल-अमंगल के ठेकेदार गणक (ज्योतिषी) और मंगला-मुखी गणिका में भी कुछ समानता है, इसे सामान्य जन भले ही न जानें, पर कवि तो जानता है। क्योंकि गणक की गति केवल नवग्रह तक है और कवि की गति 'जहां न जाय रवि' तक है। कवि ने लिखा :

गणिकागणकौ समानघमौ निज पंचांग निदर्शकावुभौ ।

जनमानस मोहकारिणौ तौ विधना वित्तहरौ विनिर्भितौ ॥

—गणिका और गणक दोनों समान घर्मा हैं, गणक अपना पंचांग दिखाता है, तो गणिका अपने पंचांग (पांचों अंग)। दोनों जनता के मन को मोहित और भ्रमित करते हैं, विदाता ने दोनों को ही जनता का घनापहरण करने वाला बनाया है।

66 जिस तरह ब्रिटेन ने महारानी एलिजाबेथ के राज्यारोहण का समारोह माउण्ट एवरेस्ट पर विजय प्राप्त करके अनोखे ढंग से मनाने का स्वप्न संजोया था, उसी प्रकार अमरीका ने अपनी स्वतन्त्रता-प्राप्ति का द्विशती समारोह वाइकिंग-१ को मंगल ग्रह पर उतारकर मनाने का निश्चय किया।

पर वाइकिंग के नखरे भी कम थोड़े ही हैं। हजरत ६१ करोड़ ४० लाख किलोमीटर की दूरी तय करते-करते ४ जुलाई के बजाय खरामा खरामा २० जुलाई को वहां उतरे हैं। पहले अपने उत्तरने के स्थान पर ही सहमत नहीं हो रहे थे। पर जब मिल्नत-समाजत के बाद उत्तर ही गए तो अपनी बांह ही तुड़वा बैठे। अब वैज्ञानिक विचारे परेशान—कि इतनी दूर पांव फैलाकर आराम से बैठे इस शैतान छोकरे की बांह ठीक कैसे करें ?

↙ पर वैज्ञानिक इस मंगल ग्रह के पीछे पड़े ही क्यों हैं ? बात असल में यह है कि पाश्चात्य सभ्यता ने पारिवारिक सुख तो नष्ट कर ही दिया, इसीलिए पश्चिम का मानव अपने घर-परिवार से भागा-भागा फिरता है। पहले समुद्रों, पर्वतों और शूव प्रदेशों की खाक छानता रहा, पर वहां भी जब सुख नहीं मिला तो वह इस पृथ्वी लोक की परिधि से निकलकर चन्द्रमा, मंगल और शुक्र आदि ग्रहों के पीछे हाथ धोकर पड़ गया। उसे लगा कि इन ग्रहों में जाकर वह सुखी हो सकेगा। भारतीय संस्कृति के इस तत्त्व को वह नहीं समझता चाहता कि सुख अपने अन्दर है, बाहर नहीं।

वाइकिंग नाम के उस नखरेबाज शैतान छोकरे ने वहां पहुंचते ही इतनी सूचना तो पृथ्वी के वैज्ञानिकों के पास भेज ही दी है कि मंगल ग्रह पर नाइट्रोजन और आर्गन गैस के लक्षण मौजूद हैं। इतने मात्र से वैज्ञानिक-गण आशान्वित हो उठे हैं। जीवन के लिए ऊर्जा, जल, नाइट्रोजन, कार्बन और फास्फेट का होना आवश्यक

है। केवल नाइट्रोजन आर्गन या जल की संभावित उपस्थिति से जीवन की कल्पना अभी दूर की कौड़ी हो सकती है। पर वैज्ञानिक ने जब चन्द्रमा के मुख से आवरण हटा दिया तो मंगल की मंगलामुखी को भी निरावरण किए बिना नहीं छोड़ेगा।

जीव विज्ञान के अनेक विशेषज्ञों की यह धारणा है कि हमारी आकाश गंगा में जितने ग्रह-उपरह हैं (जिनकी संख्या दस खरब बताई जाती है) उनमें से पांच प्रतिशत हमारी पृथ्वी के समान हैं और उनमें हमारी पृथ्वी के समान ही जीवन संभव है।

हमारे पुराणों में, मिथ्र, असीरिया, यूनान, रोम, चीन, पेरू आदि के पुराने ग्रंथों में यहूदियों तथा ईसाइयों के धर्मग्रन्थ बाइबिल में अब से हजारों वर्ष पूर्व अन्तरिक्ष-स्थित अन्य लोकों या ग्रहों से इस पृथ्वी के संपर्क का ऐसं विचित्र यानों द्वारा एक दूसरे ग्रह में आने-जाने का वर्णन है। उन बातों को आज का वैज्ञानिक अपनी सिगरेट के धुए के साथ हवा में उड़ा देगा। पर जब स्वयं वैज्ञानिक ही इस प्रकार की अन्तर्राहीय यात्रा की बात करने लगे, तब ? हाँ, तब ?

जनवरी सन् १९४८ में गाडमेन फील्ड हवाई अड्डे के पास एक उड़न-तश्तरी उड़ती हुई देखी गई। कप्तान टामस मेण्टेल एक हवाई जहाज पर उसका पीछा करने के लिए उड़ पड़े। बीच-बीच में वे रेडियो द्वारा समाचार भी भेजते रहे। तीन घण्टे बाद उनका यान अदृश्य हो गया। बाद में फोर्टनाक्स के पास यान का टूटा हुआ अंश पाया गया और उसीमें मेण्टेल का शव भी मिला।

जार्ज एडम स्की मानते थे कि ये उड़न तश्तरियां, जिनका अस्तित्व अमरीका के विमान विभाग ने स्वीकार किया है, अन्तरिक्ष यान ही है और इनमें बैठकर अन्य ग्रहों के यात्री पृथ्वी पर आते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'फ्लाइंग सौसर्स हैव लैण्ड' में नवम्बर १९४२ में केलिफोर्निया में एक ऐसे व्यक्ति से अपनी भेंट का वर्णन किया है जो उड़न तश्तरी में बैठकर शुक्र लोक से आया था। उससे उन्होंने संकेतों की भाषा में बातचीत भी की थी।

स्काटलैण्ड में श्री सेडरिक अर्लिंगहम की फरवरी सन् १९४४ में एक ऐसे व्यक्ति से भेंट हुई जो मंगल ग्रह से आया था। 'फ्लाइंग सौसर फार्म मार्स' नामक पुस्तक में उन्होंने अपनी उस भेंट का पूरा विवरण दिया है। उस मंगल ग्रह के निवासियों ने इस पृथ्वी के निवासियों के नाम एक संदेश भी दिया था, जिसका चित्र उस पुस्तक में छपा है, पर आज तक उसका अर्थ कोई नहीं निकाल सका।

इसी तरह डा० टी० लौवसांग रम्पा ने भी 'दि थर्ड आई' नामक पुस्तक में अन्य लोकों की यात्रा का वर्णन किया है। सन् १९५५ में अमरीका तथा यूरोप के कई स्थानों पर कुछ विचित्र प्रकार के मानव देखे गए थे, जो चलते नहीं, फुटकते या उछलते थे।

कुछ लोगों की यह धारणा है कि मंगल ग्रह के निवासी इस पृथ्वी के वैज्ञानिकों से भी अधिक तेज हैं, उन्होंने विज्ञान में हमसे कहीं अधिक उन्नति की है और

अब तक वे प्रयत्नपूर्वक मंगल ग्रह तक पहुंचने के हमारे प्रयत्नों को विफल करते रहे हैं।

तो क्या यह माना जाए कि मंगल ग्रह के बुद्धिमान वैज्ञानिकों ने ही हमारे वाइरिंग-१ की बांह बेकार कर दी है ?

बहरहाल, मंगलामुखी के अनावरण-अभियान की इस कथा को समाप्त करने से पहले मार्क ट्वेन द्वारा वर्णित नारी स्वभाव के संबंध में एक रोचक प्रसंग की चर्चा ठीक रहेगी :

एक दिन स्वर्ग की एक नवयीवना अप्सरा ने शैतान की कोई परेशानी दूर कर दी। शैतान कृतज्ञता से भर उठा। उसने कहा—“तुमने मेरा इतना उपकार किया है, अब मुझे बताओ, मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ ? जो भी तुम्हारी इच्छा हो, बताओ, पलक झपकते ही पूरी कर दूँगा।”

अप्सरा के लिए तुरन्त निर्णय करना कठिन हो गया। तब शैतान ने उसकी दुषिधा को देखकर स्वयं ही मुस्कराते हुए कहा—“तुम सुन्दर बनना चाहती हो न ?”

लेकिन उसी क्षण तड़ाक से एक थप्पड़ शैतान के मुख पर पड़ा और वह अप्सरा बोली—“मूर्ख कहीं का ! क्या मैं पहले से ही सुन्दर नहीं हूँ !”

## ना जाने केहि वेश में नारायण मिलि जाय !

जब स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में उदार हिन्दू धर्म की विजय-पताका फहराई तब भारतवासी तो आत्मगौरव की भावना से भर ही उठे, अमरीका में भी उस अद्भुत संन्यासी की अद्भुत बाणी ने अपने प्रशंसकों और भक्तों का एक अच्छा-खासा समुदाय पैदा कर दिया। स्वामी विवेकानन्द की भक्त बनी एक अमरीकी महिला ने सोचा कि जब शिष्य (स्वामी विवेकानन्द) का व्यक्तित्व इतना भव्य है तब गुरु का व्यक्तित्व कैसा होगा? यही सोचकर वह अमरीका से चलकर भारत आई। कलकत्ता से वह बेलूर मठ पहुंची और स्वामी विवेकानन्द की सेवा में उपस्थित होकर उनके गुरु के दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की।

श्री रामकृष्ण परमहंस उस समय हुगली के एकान्त तट पर रेत में बैठे ध्यान लगा रहे थे। स्वामी विवेकानन्द ने श्रंगुली के संकेत से उस महिला को बताया कि वे बैठे हैं मेरे गुरु—नदी तट पर ध्यानावस्थित। महिला कुछ दूर रेत में पैदल चलकर ध्यानावस्थित गुरु के निकट पहुंची, पर तुरन्त ही वापस लौट पड़ी। कटिभाग से ऊपर गुरु के शरीर को नग्न देखकर महिला को वितृष्णा हो गई और उसने स्वामी विवेकानन्द के पास आकर कहा—“महोदय, आपके गुरु तो कोई भद्र पुरुष प्रतीत नहीं होते।”

स्वामी विवेकानन्द चौंके। जब उस विदेशी महिला का व्यंजनापरक अर्थ उनकी समझ में आया, तब बोले—“देवि! हमारे और तुम्हारे देश में यही अन्तर है। तुम्हारे देश में दर्जी किसी भी आदमी को भद्र पुरुष बना सकता है, पर हमारे देश में सज्जनता की पहचान कपड़े से नहीं, चरित्र से होती है।”

फॉकलिन ने कहा है, “खाइए अपनी मर्जी से, पर पहनिए दूसरों की मर्जी से।” भोजन और वस्त्र यही तो दो चीजें हैं जो मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएं मानी जाती हैं। दोनों शरीर-रक्षा के लिए आवश्यक हैं। पर भोजन के साथ स्वाद और वस्त्र के साथ सुन्दरता का भाव इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि प्रायः मनुष्य लक्ष्यप्रष्ट होकर शरीर की रक्षा की उतनी परवाह नहीं करता जितनी स्वाद और बाहरी दिखावे की करता है। भोजन तो फिर भी अन्ततः किसी न किसी रूप में शरीर का अंग बन भी जाता है, पर वसन? वह नितान्त बाह्य वस्तु है। इस बाह्य वस्तु को ही आज के युग ने इतना महत्व दे दिया है कि आदमी की योग्यता की वही कस्ती माना जाने लगा है। संस्कृत के कवि ने शायद युग की इस प्रवृत्ति का पूर्वानुमान

करके ही लिखा है :

किंदाससा तत्र विचारणीयं वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः ।

पीताम्बरं वीक्ष्य ददौ स्वकन्यां दिगम्बरं वीक्ष्य विषं समुद्रः ॥

—कपड़े की क्या चिंता करनी—यह मत कहो । कपड़ा तो योग्यता की सब से प्रधान कस्ती है । जब पीताम्बर वेषघारी भगवान विष्णु को समुद्र ने देखा तो उनके वेष पर मुग्ध होकर उसने अपनी कन्या (लक्ष्मी) उन्हें दे दी और जब दिगम्बर वेषघारी भगवान शंकर को देखा तो उनके आगे हलाहल विष रख दिया ।

और तो और, दिगम्बर वेषघारी शंकर भगवान की लांछना करने में भगवती भागीरथी भी पीछे नहीं रहीं । कवि ने लिखा :

न विद्या नैव कुलेन गौरवं जनानुरागो धनिकेषु सर्वदा ।

कपालिना मौलिघृतापि जाह्नवी प्रयाति रत्नाकरमेव सत्वरम् ॥

—लोग न विद्या का आदर करते हैं, न ही कुल का, वे तो केवल धन का आदर करना जानते हैं । शिवजी ने जिस गंगा को अपने सिर पर धारण करके उसका मान बढ़ाया, वह गंगा भी तुरन्त दिगम्बर को छोड़कर रत्नों की खान रत्नाकर (समुद्र) की ओर भाग चली ।

डेनियल डोफो ने भले ही कहा हो, ‘तौर तरीकों से मनुष्यता का पता लगता है’ । पर शेक्सपियर की यह उक्ति ही व्यवहार में अधिक चरितार्थ होती है—वेष मनुष्य की पहचान है’ । इस वेष की महत्ता ने आचार-व्यवहार, बोलचाल, विद्या-बुद्धि सब को पीछे छोड़ दिया है । अमीर और गरीब के भेद को उजागर करने वाला और विषमता की जड़ को चिरस्थायी बनाने वाला वेष का अन्तर ही तो है । जब से जीवन स्तर को उन्नत करने की होड़ चली है, तब से यह भेद और अधिक बढ़ा ही है, घटा नहीं । अगर गांधी-युग के धनिक भी गरीबों की तरह रहन-सहन में और वेष-विन्यास में गौरव समझते थे, तो ‘गरीबी हटाओ’ के युग के गरीब अब अमीरों की तरह रहन-रहन और वेष-विन्यास में गौरव समझते हैं । यह युग के बदलने के साथ विचारों में आए परिवर्तन की निशानी है ।

पहले वस्त्र पहने जाते थे शीत और उष्णता से बचाव के लिए, लज्जा की रक्षा के लिए और निस्सन्देह देह के अलंकार के लिए भी । पर अब अन्य सब प्रयोजन गौण हो गए, प्रदर्शन और आडम्बर मुख्य हो गए । आडम्बर में भी रंगीनी और चकाचौंधि । आइजक वाट्स ने लिखा है :

मेरी अपेक्षा फूल और तितली ने अधिक सुन्दर वस्त्र धारण किए हैं : मैं भी अपनी इच्छा के अनुसार सुन्दर से सुन्दर वस्त्र क्यों न पहन लूं, पर नाना तरह की मक्कियाँ, कृमि-कीट-पतंग और पुष्प अब भी मुझे मात देते हैं ।

महापुरुषों ने कभी कपड़ों को अपने व्यक्तित्व पर हावी नहीं होने दिया । आइन्स्टीन अपने अस्तव्यस्त कपड़ों के लिए विस्थात थे । डॉ० राजेन्द्रप्रसाद भी इस

८६ — फिर इस अन्दाज से बहार आई

विषय में बहुत लापरवह थे । महात्मा गांधी ने तो सप्राट् पंचम जार्ज के दरवार में अपने चिर-परिचित वेष में उपस्थित होकर जैसे समस्त पाश्चात्य सभ्यता को ही चुनौती दे दी थी ।

आज इस सब चर्चा का प्रेरक कारण यह है कि मेंधालय के मुख्य सचिव ने घोषणा की है कि वे भविष्य में वही पोशाक पहना करेंगे जो उनके चपरासी अर्थात् चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी पहनते हैं । कभी चीन के बारे में कहा जाता था कि यहाँ के मन्त्री और चपरासी की पोशाक एक ही जैसी होती है । ठीक है, साम्यवाद या समाजवाद में इतनी समानता स्वागत-योग्य समझी जाएगी । पर यदि मुख्य सचिव महोदय को उनके वेष के कारण मामूली कलकों ने भी अर्दली समझकर तरह-न्तरह के अपने छोटे-मोटे हुक्म बजाने के लिए कहना शुरू कर दिया, तब क्या होगा । क्या मुख्य सचिव महोदय अपना परिचय-पत्र भी बिल्ले की तरह अपनी छाती पर टांगकर चला करेंगे ?

सुन्दर वेष को देखकर घोखा खाना सामान्य जनों के लिए ही नहीं, चतुर जनों के लिए भी सम्भव है । तुलसीदास जी ने लिखा है :

तुलसी देखि सुवेषु भूलहि भूढ़ न चतुर नर ।

सुन्दर केकहि पेखु बचन मुखा सम असन अहि ॥

मोर के सुन्दर पंखों को और उसकी पीहू पीहू की अमृत जैसी वाणी को सुनकर यह कौन अन्दाज लगा सकता है कि यही मोर सांप को खा जाता है ।

इसलिए सुन्दर वेष के घोखे में आने के बजाय अच्छा यही है :

तुलसी या संसार में सबसे मिलिये जाय ।

ना जाने केहि वेष में नारायण मिलि जाय ॥

## सौन्दर्य के मानदण्ड

देवराज इन्द्र की सभा अप्सराओं के नृत्य के लिए विस्थात थी। पावस कहतु में प्रकृति कुछ अविक ही सरस हो उठती है। देवराज इन्द्र ने भी पावस की इस सरसता को सार्थक करने के लिए एक विशेष नृत्य-समारोह का आयोजन किया। इस समारोह में देवताओं के साथ ऋषियों को भी आमंत्रित किया गया।

ऋषि-गण देव सभा में उर्वशी के मनोहारी नृत्यों की चर्चा सुन-सुनकर ही चिरकाल से इस प्रतीक्षा में थे कि कभी उस सौन्दर्य-प्रतिमा अप्सरा के नृत्य को अपने चर्मचक्षुओं से देखने का अवसर मिले तो नयनों की सार्थकता हो। इन्द्र का निर्माण पाकर वे गदगद हो गए। उत्फुल्ल मन इन्द्र की सभा में पहुँचे।

उर्वशी के भी मन में था कि बात-बात में बाल की खाल निकालने वाले और सारे संसार के भौतिक ऐश्वर्य को तृण-नुल्य समझने वाले, तथा अपनी अर्किचनता से घरा-घाम की सांस्कृतिक संपदा को दिन रात दोबाला करने वाले ऋषि-गण इस समारोह में आए हैं, तो मुझे अपनी कला का ऐसा सर्वांग-सम्पूर्ण प्रदर्शन करना चाहिए कि उन्हें कहीं दोष-दर्शन का अवकाश ही न मिल पाए।

उर्वशी का नृत्य प्रारम्भ हुआ। अंग-अंग से अनंग को उमगाती उसकी लावण्यवती देहपट्टि जब पवन के भक्तों से हिलती लता की तरह और वीणा के स्वरों पर अपना आपा भूल कर लहराती नागिन की नाना भंगिमाओं का प्रदर्शन करने लगी, तब ऋषियों को भी लगा कि भौतिक संसार सर्वथा असार तो नहीं है।

नृत्य की गति तेज होती गई। नर्तकी के अंगों के साथ ऋषियों के मन भी दोलाय-मान होते गए। पर इससे देवताओं की तृप्ति नहीं हुई। इस तरह के नृत्य तो इन्द्र के दरबार में प्रायः होते रहते हैं। आज के आयोजन की विशेषता फिर किस बात में है? देवताओं के मुखों पर फैला उक्त भाव पढ़कर उर्वशी ने अपने शरीर के एक-एक अंग को क्रमशः अनावृत करना प्रारम्भ किया। ऋषि-गण आंखें फाड़े मुखभाव से देखते रहे। जब उर्वशी निर्माऊं नृत्य करते-करते सर्वथा अनावृत हो गई तब देवता और ऋषि सब एक साथ 'साधु-साधु' कह उठे। पर एक वृद्ध ऋषि को इस पर भी सन्तोष नहीं हुआ और वे बोले—'उर्वशी! रुक क्यों गई, अभी सब आवरण कहां हटे हैं? आपाद मस्तक तुमने जो त्वचा का आवरण ओढ़ रखा है, उसे भी तो हटाओ !'

यह अरसिक और निर्मम ऋषि निस्सन्देह अन्दर से वैज्ञानिक रहा होगा—

८८ — फिर इस अन्दाज से बहार आई

तभी तो विश्लेषण करते-करते वह इस सीमा तक पहुंच गया।

बंगला के ख्यातनामा लेखक राजशेखर वसु की 'परशुराम' उपनाम से लिखी एक लम्बी कथा का यह संक्षिप्त रूप इस बात की स्पष्ट धोषणा करता है कि 'ब्यूटी इज बट स्किन डीप'। सारा संसार जिस सौन्दर्य के पीछे दीवाना है उसकी वास्तविक यथार्थता चमड़ी की परत तक ही है। कवि ने लिखा है :

उपनिषदः परिपीता गीतापि च हन्त मतिपञ्च नीता ।

तदपि न हा विधुवदना मानस सदनाह् बहिर्याति ॥

—सारे उपनिषद् घोटकर पी लिए, गीता भी सारी कण्ठस्थ कर ली, पर वह चन्द्रवदनी एक बार जो मन की कोठरी में घुसी तो फिर वहां से निकलने का नाम ही नहीं लेती।

'नैषधीय चरितम्' के रचयिता महाकवि हर्ष ने दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए अपने अद्भुत शब्दविन्यास का परिचय देते हुए लिखा है :

अधारि पद्मेषु तदधिणा धृणा क्व तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे ।

तदास्यदास्येऽपि गतोधिकारितां न शारदः पार्वणशवरीश्वरः ॥

—उसके चरणों ने कमलों की शोभा को फीका कर दिया, तब किसलयों में इतनी ताब कहां कि वे उसके हाथों की छाँव की छाया को भी छू सकें, और जहां तक उसकी मुख-श्री का प्रश्न है—शरत् पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र भी उसकी दासता करने में गौरव अनुभव करेगा।

जितने भी काव्य, नाटक या उपन्यास हैं वे सब प्रकारान्तर से डिडिमघोष के साथ यही धोषणा करते हैं कि सारे संसार को विजय करने की क्षमता यदि किसी में है तो वह केवल सौन्दर्य में है—

न हयैन च भातंगः न रथंनं च पत्तिभिः ।

स्त्रीणामपांगदृष्ट्यैव जीयते जगतां त्रयम् ॥

—न वहां घोड़े काम आते हैं, न हाथी, न रथ, न पदाति सैनिक, नारी की बांकी चितवन ही तीनों लोकों को जीतने में समर्थ है।

एक उर्दू के शायर ने लिखा है :

बो तबस्सुम कि शफक शमयि

चांदनी जैसे मुजस्सम हो जाये ।

ऐसे ही हुस्न से यूनान के फनकारों ने

अपनी बीनस के तसव्वुर को संवारा होगा ।

ऐसे ही हुस्न के चेहरे से तख्युल लेकर

अहूदे-पारीना के नक्काशों ने

अपने खाबों को अजन्ता में उतारा होगा ॥

रस्किन दूसरी ही बात कहता है :

याद रखो कि संसार की सबसे अधिक सुन्दर वस्तुएं ही संसार में सबसे अधिक निरूपयोगी होती हैं—जैसे मोर और लिली का फूल।

पर अक्षर इलाहाबादी सौन्दर्य से इतने निराश नहीं है। वे कहते हैं :

गुल के खाहां तो नजर आए बहुत इत्र-फरोश।

तालिबे-जमजमाए—बुलबुले शैदा न मिला ॥

—बहुत से इत्र बेचने वाले तो नजर आए जो फूलों के इच्छुक थे, पर फूलों पर न्यौछावर होने वाली बुलबुल के नगमों के इच्छुक कहीं नहीं मिले।

तत्त्वदर्शियों ने सत्यं शिवं सुन्दरं के रूप में जिस परम तत्त्व को पहचाना है, उसके एकत्व का खण्डन न हो, इसलिए यह भी कहा कि सत्य ही शिव है और सत्य ही सुन्दर है। उस परा शक्ति की अद्वैतता को सुरक्षित रखने के लिए और अपने मन के सौन्दर्यबोध का उसके साथ तालमेल बिठाने के लिए कुछ भक्तों ने ‘हे चिरसुन्दर !’ हे चिरसुन्दर को ही अपना कीर्तन मंत्र बना लिया है।

भले ही आजकल साहित्य और कला के क्षेत्र में सौन्दर्य शब्द का कितना ही बोलवाला हो, और उसके लिए सौन्दर्यशास्त्र (एस्थेटिक्स) के नाम से एक अलग शास्त्र ही अध्ययन का विषय बन गई हो, पर वेदों और उपदिष्टों में ‘सौन्दर्य’ शब्द नहीं मिलेगा—उसी अर्थ के अन्य अनेक शब्द भले ही मिलें। इसका यह अभिप्राय भी नहीं है कि बाद के भारतीय मनीषियों ने इसका विवेचन नहीं किया। रामायण में तो एक काण्ड का नाम ही सुन्दर काण्ड है। हो सकता है—यह नामकरण इसलिए किया गया हो कि उसमें लंकापुरी की शौभा तथा वैभव-विलास का वर्णन है, यद्यपि विशेषज्ञ लोग इसका सम्बन्ध सु-नर (सुन्दर) अर्थात् हनुमान से जोड़ते हैं।

चंतन्य महाप्रभु के साक्षात् शिष्य रूप गोस्वामी और उनके टीकाकार जीव-गोस्वामी ने अपने भक्तिपरक ग्रन्थ ‘हरिभक्ति—रसामृत सिन्धु’ में सौन्दर्य, रूप और लावण्य की अलग-अलग परिभाषा और व्याख्या की है। भारतीय तथा पाश्चात्य सौन्दर्य दर्शन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष चिन्तन-पद्धतियों का भेद होने पर भी तात्त्विक दृष्टि से विशेष मौलिक अन्तर नहीं है। शारीरिक सौन्दर्य के साथ मानसिक सौन्दर्य, नैतिक सौन्दर्य और प्रज्ञात्मक सौन्दर्य को दोनों चिन्तन-पद्धतियों ने स्थान दिया है।

पर आज व्यवहार पक्ष में केवल शारीरिक सौन्दर्य की ही चर्चा है। देश-देश में सौन्दर्य प्रतियोगिताएं होती हैं और अन्त में विश्वसुन्दरी चुनी जाती है। इस सौन्दर्य प्रतियोगिता में वक्ष, कटि और जघन के नाप को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है।

इधर कम्युनिस्ट देशों ने सौन्दर्य के मानदण्ड ही बदल दिए। कामरेड कास्ट्रो के क्यूबा ने गत सत्रह वर्षों से अपने यहां सौन्दर्य प्रतियोगिता बन्द कर रखी है। आजकल वहां वार्षिक मेला चल रहा है। उसमें नये ढंग की सुन्दरियों का चुनाव किया जाएगा। ये सुन्दरियां होंगी ‘बुनियादी उद्योग सुन्दरी’, ‘शर्करा सुन्दरी’ और

## ६० □ फिर इस अन्दाज से बहार आई

'वस्त्र सुन्दरी' आदि। इन सुन्दरियों का चुनाव रूप-लोभी सौन्दर्य-विशेषज्ञ नहीं करेगे, वरन् विभिन्न उद्योगों के श्रमिक संघ करेंगे।

क्या हम भी प्रचलित सौन्दर्य प्रतियोगिताएं समाप्त करके ऐसी प्रतियोगिता नहीं चला सकते जिसमें 'गोहूं सुन्दरी', 'मक्खन-सुन्दरी' आदि चुनी जाएं और दशहरे या दीवाली पर आवृत्तिगिक उत्पादन के क्षेत्र में विशेष करामात दिखाने वाली प्रति-भागों को पुरस्कृत किया जाए ? जब सब चीजों के मानदण्ड बदल रहे हैं तो सौन्दर्य के मानदण्ड भी क्यों न बदले जाएं।

## वक्त लिखेगा कहानी एक नये मजमून की

लंकाविपति रावण भगवती सीता का हरण करके समुद्र-पार ले गया । तपस्वी राम को यह कैसे सहन होता ! पर राम साधनशून्य और सैन्यविहीन । आखिर राम ने सुग्रीव से संघि कर वानर-सेना को साथ ले लंका पर चढ़ाई की । दोनों पक्षों में घनबोर तुमुल संग्राम हुआ । दशानन की हार हुई । लंकाविपति को नामशेष कर राम ने सीता का उद्धार किया । सारी वानर-सेना हर्षोन्मत्त हो नाच उठी ।

लंकाशायर के अविपति अंग्रेज भारत की स्वतंत्रता-रूपी सीता का हरण करके समुद्र पार ले गए । तपस्वी मोहनदास करमचन्द गांधी को यह कैसे सहन होता । पर नांधी सैन्यविहीन और साधनशून्य । तब उस तपस्वी ने मिट्टी के पुतलों में प्राण फूंक कर वानर-सेना तैयार की, उसे 'करो या मरो' का मंत्र दिया और 'अंग्रेजो ! भारत छोड़ो' का जयवोष लगाकर लंकाशायर के अविपति से स्वतंत्रता-सीता का उद्धार किया । १५ अगस्त, सन् १९४७ को आजादी मिलने पर भारत की जनता हर्षोन्मत्त हो नाच उठी ।

लंका-विजय के पश्चात्, राम के उपकारों का स्मरण कर, राजगद्वी संभालते हुए विभीषण ने राम से कहा—“सीता के उद्धार का आपका लक्ष्य पूरा हो गया, अब आप कुछ दिन यहाँ लंका में विश्राम करिए और भयंकर युद्ध के कारण हुई थकावट से मुक्ति पाइए ।” विभीषण का अत्यधिक आग्रह और वानर सेना के हर्ष का उचित अवसर देखकर भी राम ने लक्ष्मण से कहा :

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते ।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

—लक्ष्मण ! यह लंका सोने की है—सुख-समृद्धि और विलास के समस्त साधनों से सम्पन्न है, पर यह मुझे अच्छी नहीं लगती । मुझे तो अपनी जननी जन्म-भूमि—अयोध्या—ही स्वर्ग से भी बढ़कर प्रतीत होती है । उधर राम ने विभीषण को समझाया—विभीषण ! जरा उस जटाजूटधारी भरत का भी तो व्यान करो । मैंने उसे चौदह वर्ष की अवधि समाप्त होते ही तुरन्त अयोध्या लौटने का वचन दिया था । कहीं ऐसा न हो कि अवधि समाप्त होते ही मैं अयोध्या न पहुंच पाऊं और भरत प्राण त्याग दे !

लंका-विजय के पश्चात् हमारे राष्ट्र-नेताओं को भी आराम कहां ? उल्टा

## ६२ □ फिर इस अन्दाज से बहार आई

उन्हें 'आराम हराम' है का नारा देना पड़ा और सारे देशवासियों का कठिन परिश्रम के लिए आह्वान करना पड़ा। विगत एक सहश्राब्दी की पराधीनता से पददलित यह देश शोषण का और दयनीयता की हृद तक दरिद्रता का शिकार बन चुका था। उसे फिर से संसार के सभ्य, समृद्धि और सुविकसित देशों के स्तर तक लाना आसान काम नहीं था। उसके लिए कठिन परिश्रम की आवश्यकता थी।

कभी जो 'सोने की चिड़िया' कहलाती थी, उसके पंख कट चुके थे, वह उड़ना ही भूल गई थी। जो भूमि कभी 'मुजलाम् सुफलाम् शस्य श्यामलाम्' थी, वह अब अकाल, भूख और बेकारी उगाने लगी थी। उस भूमि को पुनः उस गौरव तक पहुंचाने के लिए, कठिन परिश्रम के सिवाय और कोई चारा नहीं था। नेहरू जी ने 'आराम हराम है' का नारा दिया, तो लालबहादुर शास्त्री ने 'जय जवान, जय किसान' का नारा दिया। किन्तु जब उससे भी आम जनता की हालत में सुधार नहीं हुआ, तब श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस देश की बांगडोर संभालते ही 'गरीबी हटाओ' का नारा देकर सारे देश का ध्यान समाज के पिछड़े वर्गों की ओर खींच दिया।

कभी वेद के ऋषि ने गाया था :

यस्यां समुद्रं उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्ट्यः संबभूतः ।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वं पेये दधातु ॥

—जिस भूमि में समुद्र है और अनेक नदियाँ हैं, जिसमें अन्न की और धन-धान्य की कमी नहीं है, जिसमें प्राण-जगत् विचरण करता है, वह भूमि हमारे भरण-पोषण और खान-पान की समुचित व्यवस्था करे।

अरथ्यानी सूक्त का रचयिता इरम्मद-पुत्र देवमुनि कहता है :

अंजनगंधिं सुरभिं बह्नन्म् अक्षवीक्ष्याम् ।

प्राहं भूगर्भां मातरं अरथ्यानीं अशंसिषम् ॥

—जिन जंगलों में अंजन-सी गंध है, जो सौरभ से भरे हैं, जो बिना जोते-बोए ही प्रचुर अन्न प्रदान करते हैं और जो वन्य जन्तुओं के लिए माता के समान हैं, उन जंगलों की मैं प्रशंसा करता हूं। बिना जोते-बोए ही प्रचुर खाद्य पदार्थ प्रदान करने वाले जंगलों की तो बात ही क्या, यहां तो जोते और बोए खेत भी इस देश का घेट भरने में असमर्थ हो गए। कृषि-प्रधान देश होकर भी इसे बाहर से अनाज मंगवाना पड़ा। इमर्सन ने लिखा है :

हल और पतवार से क्या होगा,

भूमि और जीवन से भी क्या होगा,

यदि स्वतंत्रता ही नहीं मिली ।

परन्तु लेलिन ने कहा :

कितनी भा राजनीतिक आजादी भूखी जनता को सन्तुष्ट नहीं कर सकती।

इसका अभिप्राय यह है कि केवल राजनैतिक स्वतंत्रता मिल जाने से ही समस्या हल नहीं हो जाती। राजनैतिक स्वतंत्रता तो एक साधन है, असली साध्य है जनता की खुशहाली। और यहाँ आकर स्वराज्य और सुराज्य का मेल होता है।

विश्वकवि रविन्द्रनाथ द्वारा रचित 'जन गण मन' की ही पंक्तियाँ हैं :

पतन अम्युदय बन्धुर पन्था युग युग धावित यात्री  
हे चिर सारथि, तब रथ चक्रे मुखरित पथ दिन-रात्रि  
दारुण विष्वलव मांझे, तब शंख ध्वनि बाजे  
संकट दुःखत्राता

जन गण मन अधिनायक जय हे, भारत भाग्यविवाता

—यह भारत रूपी यात्री पतन और उत्थान के पथ पर युग-युग से दौड़ता चला आ रहा है। हे भारत देश के जन गण मन अधिनायक, चिर सारथि ! तुम्हारे रथ के पहियों में वह पथ मुखरित हो रहा है। जब दारुण विष्वलव के बीच तुम्हारी शंख-ध्वनि बजेगी, तभी इस देश का संकट और दुःखों से त्राण होगा। तुम्हीं भारत के भाग्य-विवाता हो !

जब-जब राजनैतिक संकटों के दौर से देश गुजरता है तब-तब इस दारुण विष्वलव के मध्य कोई गांधी, कोई जवाहर, शंख बजाकर देश में नया जवीन, नया विश्वास और नई आशा फूंकता है। रवि वाबू उसीकी भविष्यवाणी अपनी कविता में कर गए हैं।

जो आजादी की गंगा शहरों में आकर रुक गई थी, अब वह गांवों तक भी पहुंचने लगी है। प्रधानमंत्री के पराक्रम ने पहली बार देश के पिछड़े वर्ग को सही मायनों में आजादी की खुशियों से परिचित कराया है। अब अराजकता, अनुशासन-हीनता और असामाजिकता का अन्वकारपूर्ण आवरण छिन्न-भिन्न हो रहा है और देश समृद्धि के नये प्रभात की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा है।

पर समृद्धि का द्वार कभी परिश्रम के बिना नहीं खुलता। इसलिए जोश मलीहाबादी के इन शब्दों से हम २१वें मुक्ति-पर्व का अभिनन्दन करें :

वक्त लिखेगा कहानी एक नये मजमून की ।

उसकी सुर्खी को जरूरत है हमारे खून की ॥

## श्रम के स्वेद-बिन्दु

इमर्सन ने कभी कहा था : “इतिहास में सबसे अधिक महान् वह है जो सबसे अधिक गरीब है।” पर उसकी महत्ता को इससे पहले कभी इतिहास ने भी नहीं समझा था।

न्यू टेस्टामेण्ट का यह कथन—“गरीबो ! तुम धन्य हो, क्योंकि प्रभु का राज्य तुम्हारे लिए ही है।”—कितना ही आश्वासनदायक क्यों न हो, पर यह कथन भी भाग्यवाद से प्रेरित इस धारणा को नहीं मिटा सका कि संसार में अमीर-गरीब सब भाग्य का ही खेल है, इस स्थिति को बदलना मानव के हाथ की बात नहीं।

जब से मार्क्स ने संसार के मजदूरों और मजलुमों को संगठित होने का आह्वान किया, तब से यह धारणा बलवती होती गई कि गरीबी के विरुद्ध लड़ने के लिए गरीबी ही सबसे बड़ा हथियार बन सकती है, अगर गरीब लोग आपस में मिल जाएं। गरीबों के संगठन से उत्पन्न महान् शक्ति की घोषणा विश्वकवि रवीन्द्र ने भी की थी और उसीका संकेत इस बार १५ अगस्त को लालकिले की प्राचीर से भाषण देते हुए प्रधानमन्त्री ने किया था। गरीबी की इस शक्ति का परिपाक दिखाई दिया कोलंबो के निर्गुट सम्मेलन में।

संस्कृत के एक कवि ने कहा है :

दुन्दुभिस्तु सूतरामचेतनः तन्मुखादपि धनं धनं धनम् ।

इत्यमेव निनदः प्रवर्तते किं पुनर्यदि जनः सचेतनः ॥

—दुन्दुभि (नगाड़ा) बिल्कुल अचेतन और जड़ है, किन्तु उसके मुख से भी लगातार धन-धन-धन की ही आवाज आती है, फिर यदि सचेतन प्राणी मानव भी धन के पीछे दीवाना हो तो इसमें आश्चर्य क्या है ?

दूसरे कवि ने कहा है :

बुभुक्षितं व्याकरणं न भुज्यते पिपासितंः काव्यरसो न पीयते ।

न छन्दसा केनचिद्दुद्घृतं कुलं हिरण्यमेवार्जय निष्फला गुणाः ॥

—भूखा व्यक्ति व्याकरण से पेट नहीं भर सकता, प्यासा व्यक्ति काव्य-रस से अपनी प्यास नहीं बुझा सकता। आज तक छन्दशास्त्र से किसीके कुल का उद्घार नहीं हुआ, इसलिए और सब गुणों को छोड़कर केवल कमाने की ही चिन्ता करो।

आश्चर्य की बात है कि जो कम्युनिस्ट दिन-रात धनिकों को भला-बुरा कहते रहते हैं और उनके गले में पत्थर बांधकर उनको समुद्र में डुबो देना चाहते हैं, उनके

मन में भी प्रच्छुल्ल रूप से किसी न किसी प्रकार स्वयं धनपति बन जाने की और धनपतियों की तरह विलासितापूर्ण जिन्दगी बिताने की आकांक्षा घर किए रहती है। गरीबों के ऐसे स्वयंभू हितेषियों की तुलना उन साधु-सन्तों और मठाधीशों से की जा सकती है जो दुनिया-भर को त्याग-तपस्या का उपदेश देते हैं, पर स्वयं रेशमी वस्त्रों के बिना नहीं रह सकते, सोने-चांदी के बर्तनों के बिना भोजन नहीं कर सकते और जिनके आश्रम ठाट-बाट में राजा-महाराजाओं के महलों को भी मात करते हैं। ऐसे लोगों की हालत देखकर जिगर का यह शेर याद आए बिना नहीं रहता :

हज्वे-मय ने तेरा ऐ शैख भरम खोल दिया ।

तू तो मस्तिजद में है नीयत तेरी मैखाने में ॥

—सबको परहेजगारी का उपदेश देने वाले शैख जी ! आप जो दिन-रात शराब की निन्दा करते रहते हैं उसीसे आपकी पोल खुल गई है—आपका शरीर तो मस्तिजद में है, पर आपका मन शराबखाने में रहता है।

गरीबी के सम्बन्ध में संस्कृत के एक कवि ने और भी अधिक मजेदार बात कही है :

एको हि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जर्तान्दोरिति यो बभाषे ।

न तेन दृष्टं कविना सनस्तं दारिद्र्यमेकं गुणकोटिहारी ॥

—जहां बहुत सारे गुण हों वहां एक दोष वैसे ही आंखों से ओझल हो जाता है जैसे चन्द्रमा की चमकीली किरणों में उसका कलंक छिप जाता है—जिस कवि ने यह बात कही है उसने यह नहीं देखा कि दरिद्रता का एक ही दोष ऐसा है जो कोटि-कोटि गुणों को भी ओझल कर देता है। समस्त योग्यताओं, गुणों और विशेषताओं को समाप्त कर देने वाली इस दरिद्रता से तंग आकर सर मुहम्मद इकबाल ने स्वयं परमात्मा से शिकायत करते हुए कहा था :

तेरी दुनिया में मैं मुफ़्लिस और मजलूम

मेरी दुनिया में तेरी बादशाही ?

—या खुदा ! यह कैसा विरोधाभास है कि तेरी दुनिया में मैं तो गरीबी, शोषण और जुल्मों का शिकार हूं और मेरी दुनिया में तेरा एकच्छव्र साम्राज्य है, तेरे विरुद्ध कोई चूं तक नहीं कर सकता ।

पर प्रश्नों का प्रश्न यह है कि गरीबी की परिभाषा क्या है और उसका मानदण्ड क्या है ? इस विषय में राजा, योगी, कवि और पण्डित—सब एक साथ—भर्तृहरि ने जैसी कांटे की बात कही है, वैसी शायद अन्यत्र दुर्लभ है। भर्तृहरि की बाणी में जैसे सारे तत्त्वज्ञान का निचोड़ आ गया है :

वयमिह परितुष्टा बल्कलैस्त्वं दुकूलैः

सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।

स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला

मनसि च परितुष्टे कोर्जवान् को दरिद्रः ॥

## ६६ □ फिर इस अन्दाज से बहार आई

—हम यहां वृक्षों की छाल ओढ़कर सन्तुष्ट हो जाते हैं और तू शाल-दुशालों और रेशमी वस्त्रों से सन्तुष्ट होता है। सन्तोष तो दोनों तरफ बराबर है, फिर उसमें अन्तर कहां रहा। दरिद्र वह होता है जिसकी तृष्णा विशाल होती है। मन के सन्तुष्ट हो जाने पर कौन अभीर है और कौन गरीब है।

इसी बात को सधुकड़ी भाषा में कहा गया है :

चाह गई, चिन्ता मिटी भनुआ बेपरवाह ।

जिनको कछु न चाहिए वे शाहन के शाह ॥

सच तो यह है कि जिन्होंने स्वेच्छा से गरीबी का वरण किया है उनसे बढ़कर संसार में शाह कोई नहीं है। यूनान के अभीरों ने मेहनत-मजदूरी, खेती और उत्पादन का सारा भार गुलामों को सौंप दिया था और स्वयं विलासिता में मग्न होकर वे कला और सरस्वती की उपासना करते थे। पर भारत में कला और सरस्वती की उपासना विलासिता का पर्याय नहीं बनी, प्रत्युत सर्वस्व त्यागी ब्राह्मणों ने स्वयं अङ्किचन रहकर अपना सारा जीवन संस्कृति के विकास में लगा दिया। पाश्चात्य और भारतीय संस्कृति के इसी मूलभूत भेद का परिणाम है कि यहां सांसारिक वैभव से शून्य, तपोवन ऋषि सदा पूजित रहा, वह समाज का नेता रहा, राजसत्ता भी उसका आदर करती रही, क्योंकि निःस्वार्थता ने उसकी वाणी में इतना ओज भर दिया था कि बड़ी से बड़ी शक्ति भी उसकी अपेक्षा नहीं कर सकती थी।

जीवन-स्तर को उन्नत करने की होड़ में, आपाधापी की जोड़-न्तोड़ में, स्वेच्छया गरीबी का वरण करने वाला, वह ब्रह्मतेज का उपासक वर्ग आज दीपक लेकर ढूँढ़ने की चीज बन गया। आज तो जिसके पास है, वह भी और जिसके पास नहीं है, वह भी अधिक से अधिक अपने पास समेट लेने को आतुर है और इसी-लिए हाय-हाय इतनी बढ़ गई है। जीवन के उदात्त गुणों की अपेक्षा बाहरी चमक-दमक और आडम्बर का इतना बोलबाला हो गया है कि यथार्थ की कोई चिन्ता नहीं करता।

एक प्रसंग से बात समाप्त करें :

वर्षा ऋतु का आगमन निकट देखकर महर्षि कणाद ने सोचा कि यज्ञ के लिए समिधा और पाकशाला के लिए सूखा इंधन अभी से एकत्र कर लें। वे शिष्यों को लेकर बन की ओर निकल पड़े। सबके हाथों में कुल्हाड़ियां और रस्सी। संध्या होते-होते इंधन का ढेर लग गया। रस्सियों से गटुर बांधकर और कन्धों पर लादकर वे आश्रम में ले गए। अगले दिन जब शिष्यगण स्नान के लिए नदी की ओर चले, तो रास्ते में वही जंगल पड़ा जहां से उन्होंने कल परिश्रमपूर्वक लकड़ियां इकट्ठी की थीं। सभी ने अनुभव किया कि जो जंगल कल तक बिल्कुल सूखा था, वह सहसा मधुर गन्ध चाले सहनों फूलों से महक उठा है। महर्षि ने आश्चर्य के साथ कहा : “सूखी लकड़ियों के इस जंगल में यह सुगन्ध कौसी ?” शिष्यों ने आसपास जाकर देखा तो पता चला कि पिछले दिन परिश्रमपूर्वक इंधन इकट्ठा करते समय जहां-जहां उनके स्वेद-बिन्दु गिरे थे, वहां-वहां मधुर सौरभ चाले सुन्दर सुमन खिल उठे हैं।

## मारीशस में विश्व हिन्दी सम्मेलन

गांधीजी को कहीं सफर के लिए जाना था। उन्होंने अपने निजी सचिव महादेव देसाई को टिकट लेने के लिए भेजा। गांधी जी सदा तीसरी श्रेणी में ही सफर करते थे, इसलिए टिकट भी उसी श्रेणी का लेना था। तीसरी श्रेणी के टिकट घर पर कितनी भीड़ होती है, इससे गांधी जी अपरिचित नहीं थे। जितना समय टिकट लेकर आने में लगते की उम्मीद थी, जब उससे बहुत पहले ही महादेव भाई टिकट लेकर आ गए तो गांधीजी महादेव भाई से बोले : “जरूर तुमने टिकटघर जाकर अंग्रेजी बोली होगी, इसीलिए इतनी जल्दी आ गए, नहीं तो इतनी जल्दी टिकट नहीं मिल सकता था।” महादेव भाई ने गलती स्वीकार कर ली।

एक दूसरा दृश्य है :

१५ अगस्त १९४७ भारत की आजादी का दिन। सारा देश दीर्घकालीन विदेशी दासता से मुक्ति पाने के आनन्द से उच्छ्वसित। आबालबूद्ध नरनारी सब किसी अलौकिक हर्षातिरेक में निमग्न। पर गांधीजी कलकत्ता और नोआखाली के हृत्याकाण्ड से तथा देश के विभाजन से दुखी। १५ अगस्त से पहली शाम को बी० बी० सी० वाले अपना सब तामझाम लेकर कलकत्ता में गांधीजी की सेवा में उपस्थित होते हैं—सारे संसार के नाम स्वतंत्र भारत का सन्देश प्रसारित करने के लिए। स्वतंत्र भारत का सही प्रतिनिधित्व गांधी से बढ़कर और कौन कर सकता था ! उस दिन गांधीजी का मौन था। जब उन्हें पता लगा कि बी० बी० सी० वाले अमुक प्रयोजन से आए हैं, तो उन्होंने एक कागज पर लिखकर दिया—“संसार से कह दो, गांधी अंग्रेजी नहीं जानता।”

पर विधि की विद्म्बना देखिए कि सारे संसार को उक्त सन्देश देने वाला तो चला गया, और गांधी के उसी देश में अंग्रेजी अभी तक ज्यों की त्यों बरकरार है। ‘ज्यों की त्यों’ क्यों, बल्कि उससे भी अधिक। जब महारानी एलिजाबेथ भारत-यात्रा पर आई थीं तब लाल किले में उनके सम्मानार्थ दिल्ली नगर निगम की ओर से दिए गए मानपत्र में यह बात सगवं कही गई थी : “महारानी जी ! आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अंग्रेजों के इस देश से चले जाने के बाद भी इस देश में अंग्रेजी के पठन-पाठन में और व्यवहार में कोई कमी नहीं आई है, बल्कि उसमें और चूढ़ि हुई है।”

आजादी के बाद के गत उनतीस वर्षों में अंग्रेजी का प्रभुत्व हटाने और हिन्दी

तथा अन्य भारतीय भाषाओं को उनका उचित स्थान दिलाने के लिए जितने आनंदो—लन हुए, उनका कुछ असर तो हुआ—सरकारी दफ्तरों और शिक्षा संस्थानों में हिन्दी के व्यवहार में उपस्थित होने वाली बाधाएं कुछ दूर हुईं, पर एक पश्चात्ताप की सी प्रवृत्ति भी पैदा हुई। जिन राज्यों ने राष्ट्रीय स्वाभिमान के बशीभूत होकर अंग्रेजी को अपदस्थ करने के लिए नहीं, केवल उसकी अनिवार्यता हटाने के लिए कदम उठाए थे, उन्होंने देखा कि हम तो आधुनिक प्रगति की दौड़ में पिछड़ते जा रहे हैं—हमारे जो छात्र पहले आखिल भारतीय प्रतियोगिताओं में विजयी होकर उच्च सरकारी पद प्राप्त करने में सफल होते थे, अब उनका कहीं नम्बर नहीं आता; तब उन्होंने प्राय-रिच्चत स्वरूप पुनः अंग्रेजी को उसी प्रकार धूमधड़ाके से अनिवार्य करने की सोची। भव्य प्रदेश और पंजाब ने प्रारम्भक कक्षाओं से ही अंग्रेजी को अनिवार्य करने की दिशा में कदम भी उठा लिया। शायद अन्य राज्य भी इसी प्रकार का ‘प्रायरिच्चत’ करने की सोच रहे हों?

लीजिए एक ताजा समाचार भी पढ़ लीजिए :

एक छात्रा ने हिन्दी के माध्यम से बी० कॉम० करने के लिए कई कालेजों में आवेदन पत्र दिए। इस छात्रा ने हायर सेकेण्डरी परीक्षा में ७० प्रतिशत अंक प्राप्त किए थे, लेकिन किसी भी कालेज ने उसे हिन्दी माध्यम से बी० कॉम० करने के लिए प्रवेश की अनुमति नहीं दी। बहुत दौड़-धूप करने के बाद आखिर में उसे अंग्रेजी माध्यम से ही अध्ययन जारी रखने पर विवश होना पड़ा।

डॉ० राममनोहर लोहिया के जीवन की एक घटना भी इस प्रसंग में याद आ रही है :

सन् १९५१ में एक केस के दौरान सर्वोच्च न्यायालय में डॉ० लोहिया ने हिन्दी में इतना ही कहा था कि मुझे आपसे अपने १८ नवम्बर के मुकदमे के बारे में कुछ निवेदन करना है, कि न्यायमूर्ति श्री कपूर ने उन्हें टोककर कहा कि इस न्यायालय की भाषा अंग्रेजी है। तब डॉ० लोहिया ने कहा : “तब तो संविधान पर ही बहस करनी पड़ेगी। पर जैसे मैं आप पर हिन्दी नहीं लादना चाहता, जबकि संविधान के अनुसार शायद मुझे वैसा करने का हक हो, वैसे ही माननीय न्यायधीशों को भी मुझ पर अंग्रेजी नहीं लादनी चाहिए।”

उसके बाद डॉ० लोहिया अपने दौरे पर चले गए पर न्यायालय को अपने केस के सम्बन्ध में हिन्दी में पत्र लिखते रहे। हैदराबाद में २५ सितम्बर को सर्वोच्च न्यायालय की ओर से उन्हें एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें अंग्रेजी में लिखा था—“सर्वोच्च न्यायालय की भाषा अंग्रेजी है और न्यायालय का समय अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा में पत्र-व्यवहार करके बर्बाद न करें।” डॉ० लोहिया ने हिन्दी में इसका संक्षिप्त सा उत्तर दिया : “कौन किसका समय बर्बाद कर रहा है?”

डॉ० लोहिया ने ही कभी कहा था : “बुनियादी बात यह है कि गत पन्द्रह सौ सालों से हिन्दुस्तान की संस्कृति में एक अजीब फूट चली आ रही है। एक तरफ तो

कुछ लोगों की सामन्ती भाषा, सामन्ती भूषा, सामन्ती जीवन और सामन्ती रहन-सहन रहा है और दूसरी तरफ करोड़ों लोगों की लोकभाषा लोकभूषा, लोकजीवन और लोक-व्यवहार है। पन्द्रह सौ वर्षों से इस सामन्ती भाषा का राज चला आ रहा है। उदाहरण के लिए किसी जमाने में संस्कृत सामन्ती भाषा थी और प्राकृत, अपभ्रंश और पाली लोकभाषाएं थीं। बाद में अरबी और फारसी सामन्ती भाषाएं बनी और हिन्दी, उर्दू, तमिल, बंगाली आदि लोकभाषाएं रहीं। आज अंग्रेजी सामन्ती भाषा है और हिन्दी, तमिल, तेलुगु, मराठी, पंजाबी आदि लोकभाषाएं रहीं। आज भी पांच-दस लाख लोग पचास करोड़ की छाती पर मूँग दल रहे हैं। सरकारी दफ्तरों, संस्थाओं, कच्चहरियों, विद्यालयों और सार्वजनिक संस्थानों में अंग्रेजी और इन पुरुतनी गुलाम काल साहबों की चलती है। ऐसा लगता है कि ये पांच-दस लाख लोग घर के अन्दर हैं और बाकी पचास करोड़ चौक्षट के बाहर खड़े हैं।\*\*\*

“देहातों में लोगों पर भूत चढ़ता है तो ओझा को बुलाकर मन्तर पढ़वाते हैं और भूत झड़वाते हैं। ओझा का मन्तर लोग समझने लगें तो उसकी ओझाई और भूत दोनों खत्म हो जाएं। उसी तरह आज देश के वकील, डाक्टर और नेता अंग्रेजी भाषा में अपनी ओझाई चला रहे हैं।”

और हाँ जैसे गांधी जी चले गए, पर अंग्रेजी नहीं गई, वैसे ही लोहिया भी चले गए, अंग्रेजी नहीं गई। लगता है : सात समुद्र लांघकर आई यह विदेशी भाषा समुद्र से निकला सारा अमृत देवताओं से छीनकर स्वयं डकार गई है। या जिस संजीवनी बूटी से लक्षण की मूर्च्छा टूटी थी वही संजीवनी बूटी कहीं इस अंग्रेजी के भी हाथ न लग गई है। सुषेण वैद्य और हनुमान कायम रहें, संजीवनी तो कहीं न कहीं से आती ही रहेगी !

इस परिवेश में मारीशस में द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन हो रहा है और अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर हिन्दी को संयुक्तराष्ट्र संघ में स्थान देने की मांग का प्रस्ताव मनों में है। मांग गलत कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि आज हिन्दी सचमुच अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन चुकी है। मारीशस, सुरीनाम, फिजी और गुयाना में तथा एशियाई-अफ्रीकी-अमेरीकी और यूरोपीय देशों में जहां-जहां भारतवासी लोग रहते हैं, वहां-वहां यह लाखों लोगों के दैनिक व्यवहार की भाषा है। विश्व के ६३ विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। और सबसे बढ़कर एक मुंह बोलता यथ्य यह है कि इस समय संयुक्त राष्ट्र संघ में जिन छः भाषाओं को मान्यता प्राप्त है : अंग्रेजी, रूसी, चीनी, फ्रेंच, स्पेनिश और अरबी, उनमें अंग्रेजी और चीनी को छोड़कर आज हिन्दी को बोलने और समझने वालों की संख्या बाकी चारों भाषाओं से बहुत अधिक है। इसलिए संयुक्तराष्ट्र संघ में स्थान मिलना हिन्दी पर अहसान नहीं, उसका न्यायोचित अधिकार है। पर यहां भी नागपुर में हुए प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में पूर्वी जर्मनी के हैडलबर्ग विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ० लुत्से का कथन याद आता है : “भारत में हिन्दी की क्या स्थिति है, इसके सम्बन्ध में आपको याद दिलाने वाला मैं

१०० □ फिर इस अन्ताज से बहार आई

कौन होता हूँ ?”

प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने तत्त्व की बात कही है : “सरकारों के संरक्षण से भाषा की उन्नति नहीं होती है, भाषा की उन्नति तब होती है, जब वह जनता के हृदय में बसती है।” हिन्दी सचमुच जगन्नाथ का रथ है : इसे जनता ही खींचती है, सरकार नहीं।

पर वह जनता कहां है ? राष्ट्र की चेतना को अपने ओजस्वी स्वर से उद्बुद्ध करने वाला राष्ट्रकवि दिनकर :

सिहासन खाली करो कि जनता आती है।

—कहता-कहता अन्त में समुद्र-तटवर्ती चट्ठानों को अपनी हुँकार सुनाता हुआ सो गया, पर जनता नहीं आई।

जनता नहीं आई, इसलिए हिन्दी भी नहीं आई।

## तस्मै श्री गुरवे नमः

दक्षिण भारत के महान् सन्त तिरुवल्लुवर के जीवन की एक घटना है।

एक दिन कुछ शरारती लड़कों ने उनकी परीक्षा लेनी चाही कि इनको गुस्सा आता है या नहीं। इनमें एक बहुत घनी आदमी का भी लड़का था जिसे अपने पैसे का धंमड था। सन्त तिरुवल्लुवर कवीर की तरह जुलाहे का काम करते थे। उस लड़के ने सामने रखी साड़ियों में से एक को उठाकर कहा—“इसका क्या लोगे?”

सन्त ने कहा—“दो रुपये।” लड़के ने उस साड़ी के दो टुकड़े कर दिए और बोला—“मुझे पूरी नहीं, आधी चाहिए। इसका क्या लोगे?” सन्त ने कहा—“एक रुपया।” लड़के ने आधी साड़ी के दो टुकड़े कर दिए और पूछा—“इसका क्या दाम होगा?” सन्त ने बिना किसी नाराजगी से कहा—“आठ आने।”

लड़का तो शरारत पर तुला हुआ था। वह साड़ी के टुकड़े पर टुकड़े करता रहा। पर जुलाहे ने न उसे रोका, न ढांटा, न कोई आपत्ति की। जब साड़ी के टुकड़े-टुकड़े हो गए तो वह लड़का हँसकर बोला—“ये टुकड़े मेरे किस काम के? मैं इन्हें नहीं खरीदूंगा।” सन्त ने बिना किसी तेजी के कहा—“तुम ठीक कहते हो बेटा! ये टुकड़े अब तुम्हारे क्या, किसीके भी काम नहीं आ सकते।”

किशोर को इस बात पर कुछ शर्म आई। उसने कहा—“मैं पूरी साड़ी के दाम दिए देता हूँ।” सन्त ने कहा—“जब ये टुकड़े तुम्हारे काम नहीं आ सकते तो मैं इनका दाम कैसे ले सकता हूँ!”

लड़के के ऊपर तो अपने घन का नशा चढ़ा था। बोला—“मैंने तुम्हारी चीज खराब कर दी। उसका धाटा मुझे पूरा ही करना चाहिए। फिर तुम गरीब हो, और मेरे पास पैसों की कमी नहीं है।”

सन्त तिरुवल्लुवर में शान्त स्वर में कहा—“क्या तुम इसका धाटा पूरा कर सकते हो? क्या रुपये से धाटा पूरा हो जाएगा? देखो, किसानों की मेहनत से कपास पैदा हुई। धुनकियों ने उसे धुनकर बिनौले अलग निकाले। मेरी घरवाली ने रई से सूत काता। फिर मैंने उस सूत को रंगकर कई दिन लगातार श्रम करके उससे साड़ी बुनी। हम सबकी मेहनत तो कारगर तब होती जब कोई इस साड़ी को पहनता। पर तुमने तो इसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इतने लोगों की मेहनत बेकार हो गई। रुपये से यह धाटा कैसे पूरा हो सकता है?”

जैसे बाप बेटे को समझाता है, वैसे ही बिना किसी आवेश के सन्त तिरुवल्लु-

वर ने जब उस लड़के को यों समझाया तो वह पानी-पानी हो गया, उसकी आँखें भर आईं और वह तिश्वल्लुवर के पांवों पर गिर पड़ा। सन्त ने भी उसे उठाकर छाती से लगाते हुए कहा : “अगर मैं लालच में पड़कर दो रुपये ले लेता, तो तुम्हारी जिन्दगी का वही हाल हुआ होता, जो इस साड़ी का हुआ है। वह किसीके काम न आती। अब तुम समझ गए, आगे ऐसी गलती कभी नहीं करोगे। एक साड़ी खराब हो गई, तो दूसरी तैयार हो सकती है, लेकिन जिन्दगी बिगड़ गई, तो दूसरी कहां से लाओगे ?”

// शिक्षक का असली काम इसी प्रकार प्रेम से बच्चों की जिन्दगी सुधारना ही है। माता-पिता बालक के जन्म के लिए बेशक उत्तरदायी हैं, पर उसे संस्कारवान् बनाकर दूसरा जन्म देने के लिए—द्विज बनाने के लिए—गुरु ही उत्तरदायी है। इस-लिए शास्त्रों में गुरु की इतनी महिमा गाई गई है। भक्तजनों ने गुरु को न केवल ईश्वर के समकक्ष रख दिया है, बल्कि उससे भी ऊंचा दर्जा दिया है, क्योंकि :

गुरु गोविन्द दोनों खड़े का के लागू पाय ।

बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय ॥

पर जब गुरु अपने आपको ईश्वर का अवतार बताकर पूजा करवाने में और शिष्यों का धन लूटकर अपनी जिन्दगी को ऐश-आराम से गुजारने में ही अपनी गुरु-आई की सार्थकता समझता हो, तब गुरुडम किस प्रकार पाखंड को जन्म देता है, उसके अनेक उदाहरण हमारे तथाकथित घर्मंगुरुओं ने उपस्थित कर दिए हैं। //रहे विद्या-गुरु, उनकी दशा भी कम दयनीय नहीं है। महाकवि भर्तृ हरि ने लिखा है :

शास्त्रोपस्कृतशब्द सुन्दर गिरः शिष्य - प्रदेयागमा ।

विद्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोनिर्वन्नाः ॥

तज्जाङ्कं वसुधाविपस्य कवयोऽप्यर्थं विनायीश्वराः ।

कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका र्म मणयो यैर्वर्थतः पातिताः ॥

**टिटि** —विभिन्न शास्त्रीय विषयों के गहन अध्ययन से जिनकी वाणी सुन्दर बन गई है और जो अपने शिष्यों को विद्या-दान करके उनकी जिन्दगी सुधारने में समर्थ हैं, वे विद्वान् शिक्षक यदि किसी राजा के राज्य में आर्थिक दैन्य के शिकार रहते हैं, तो वह राजा की ही जड़ता की निशानी है, क्योंकि पण्डित लोग तो उनके बिना भी अपनी विद्या के धनी हैं ही। निन्दा के पात्र तो वे परखने वाले जौहरी हैं जो मणियों का सही मूल्य नहीं आंकते।

आजकल के शिक्षक नई पीढ़ी को दोष देते हैं और नई पीढ़ी शिक्षकों को ही कसूरवार ठहराती है। पर जूता यदि ठीक नाप का हो, तो आराम देता है, अगर कसा हो, तो चुभता है, और अगर ढीला हो, तो ठोकर लगती है। शिक्षा-प्रणाली का असली प्रयोजन तो सही नाप से है। वह सही नाप परस्पर दोषारोपण से नहीं आता। शिक्षक और छात्र दोनों एक-दूसरे के विम्ब-प्रतिविम्ब हैं। शिक्षक भी कभी स्वयं छात्र रहे थे। उनका जीवन अपने गुरुओं का प्रतिविम्ब था, तो आज के छात्रों

का जीवन अपने गुरुओं के जीवन का प्रतिबिम्ब है। एक शायर की उक्ति याद आती है :

आईना उठा लाये और अक्स से यूं बोले ।

कर्यों बात नहीं करता है, जो तू है वही मैं हूं ॥

पर एक बुनियादी भूल की ओर संकेत करना भी आवश्यक है। आदमी को केवल बुद्धि समझ लिया है। इसलिए दिन-रात उसकी बुद्धि के विकास के लिए ही प्रयत्न किए जाते हैं। पर आदमी केवल बुद्धि ही नहीं है। यदि किसी आदमी की खोपड़ी वड़ी होती चली जाए और शेष सारा शरीर क्षीण होवा चला जाए तो उस आदमी का चलना-फिरना और जीना भी दूभर हो जाएगा।

बुद्धि को नींव में रख देने से जो भवन बनता है, वह मन्दिर नहीं होता, एक फैक्टरी बन जाती है। हमारे शिक्षक अपने छात्रों को फैक्टरी की मशीन बनाते जाते हैं। ऐसी मशीन जिसमें कम्प्यूटर की तरह गणना करने वाली बुद्धि तो फिट हो सकती है, पर आनन्द और सौंदर्य की अनुभूति करने वाला हृदय नहीं। जीवन केवल बुद्धि नहीं है, उसमें हृदय का भी उतना ही महत्व है।

और सच तो यह है कि गुरु और शिष्य का सम्बन्ध बुद्धि का नहीं, हृदय का सम्बन्ध है। यह हृदय का सम्बन्ध ही शिष्य को गुरु के प्रति सर्वस्व समर्पित करने के लिए प्रेरित करता है। जिस तरह पिता चाहता है कि मेरा पुत्र रूप-गुणशील-बल में मुझसे बढ़कर हो, उसी तरह गुरु भी चाहता है कि मेरा शिष्य मुझसे बढ़कर हो। गुरु और शिष्य दोनों एक-दूसरे पर निछावर होने को तत्पर रहते हैं। इतिहास की ही एक घटना याद आ रही है :

गुरु तेग बहादुर का शव दिल्ली में सात दिन से पड़ा था। नंगी तलवारों का अहरा। उस पहरे में से शव को निकालकर कौन लावे ?

कोमल वय का बालक गुरु गोविन्दसिंह अपने पिता के शव की दुर्दशा की बात मुनक्कर तलवारों के पहरे में से उसे निकालकर लाने के लिए एकाकी चल पड़ा। रास्ते में मिला लक्खी बंजारा जो अपने जवान बेटे के साथ बैलगाड़ी पर जा रहा था। जब उसे गुरु के संकल्प का पता लगा तो वह गुरु के चरणों को पकड़कर बैठ गया कि इस काम के लिए मैं जाऊंगा, आप नहीं। गुरु को उसके विनयपूर्ण आग्रह के सामने हार माननी पड़ी।

लक्खी बंजारा अपने जवान बेटे के साथ दिल्ली आया। पहरेदारों की गफलत का लाभ उठाकर जब गुरु तेग बहादुर का शव उसने ले लिया, तब यह समस्या पैदा हुई कि पहरेदारों को दूसरे दिन घोसे में डालने के लिए उस शव का स्थान कौन ले। पिता का आग्रह था कि यह स्थान मैं लूं, बेटा चाहता था कि मैं लूं। विवाद का अवसर नहीं था। एक-एक क्षण अमूल्य था। आखिर पिता ने अपने हाथ से तलवार

१०४ ■ फिर इस अन्दाज से बहार आई

बेटे को पकड़ाई और स्वयं उसके आगे अजेय स्मित के साथ आशीर्वाद देते हुए अपनी गर्दन झुका दी ।

जवान बेटा अपने पिता के शव को गुरु के स्थान पर लिटाकर और उनके वस्त्र ओढ़ाकर जब गुरु तेग बहादुर के महामूल्य शव को लेकर वहाँ से चला, तब उसकी आंखों से हर्ष और शोक के आंसुओं की धारा एक साथ बह चली ।

गुरुभक्ति के इस अनुपम दृश्य का साक्षी बनने के लिए दिल्ली का कोई तो नागरिक उस समय जागा होता ! अरे ! कोई तो बड़भागी जागा होता !

## संसार की छत पर कालचक्र

जब सुलतान सिकन्दर लोदी काशी पहुँचे तो कुछ कटृपंथी मुल्लाओं ने उनसे शिकायत की कि यहां कबीर नाम का एक मुसलमान जुलाहा है जो इस्लाम के विरुद्ध प्रचार करता है और जनता को भड़काता है।

कबीर को गिरफ्तार कर लिया गया। उस पर यह अभियोग लगाया गया कि वह इस्लाम, कुरान और खुदा के विरुद्ध जनता में अनास्था फैलाने का दुष्करता है इसलिए उसे सजा मिलनी चाहिए।

कबीर ने इस अभियोग के जवाब में कहा कि न मैं किसीको भड़काता हूँ, न किसीकी तौहीन करता हूँ। मुझे तो जो सच लगता है, वही कहता हूँ—चाहे वह मुसलमानों के बारे में हो, चाहे हिन्दुओं के बारे में।

कबीर से पूछा गया कि तेरे मां-बाप कौन थे और तू हिन्दू है या मुसलमान? तब कबीर ने कहा कि मेरे बाप का नाम था नीरू और मां का नाम था नीमा। वे दोनों मुसलमान जुलाहे थे, पर मैं न हिन्दू हूँ, न मुसलमान; मैं तो मात्रं केवल इन्सान हूँ।

काजी ने सुलतान को सम्बोधित करते हुए कहा : “हुजूर! इसकी बातों से बगावत भलकती है, इसे सजा मिलनी चाहिए।” इतने में कबीर की पत्नी लोई आगे आकर बोली : “इन्हें हिन्दू और मुसलमान की परिभाषा में नहीं बांधा जा सकता, ये तो सबसे न्यारे हैं। ये किसीसे नफरत नहीं करते, न नफरत सिखाते हैं। ये तो सबसे प्रेम करते हैं और सबको प्रेम का ही पाठ पढ़ाते हैं। परन्तु वर्ष के नाम पर लोगों को लूटने वाले पण्डितों और मौलियों के आचरण में इन्हें प्रेम नहीं, ढोंग और स्वार्थ दिखाई देता है।”

पत्नी द्वारा पति की बकालत से सुलतान आश्वस्त नहीं हुए और काजी की तरफ मुँह करके उन्होंने कबीर को मस्त हाथी के पांवों तले रींद ढालने का आदेश दिया। सुलतान का हुक्म सुनकर पत्नी लोई और बेटा कमाल पछाड़ खाकर गिर पड़े, पर मौत के कगार पर खड़े कबीर तनिक भी विचलित नहीं हुए। शान्त-नगमीर वाणी में सुलतान को सम्बोधित कर कबीर बोले :

माली आवत देखकर कलियन करी पुकार ।

फूले फूले चुन लिये कालिह हमारी बार ॥

इस आने वाले 'कल' के बारे में सावधान करते-करते ही कबीर सदा कहते रहे :

करो मन वा दिन को तदबीर ।

भद्रसागर नदिया अगम बहुत है जल बाढ़े गम्भीर ।

नाव न बेड़ा लोग घनेरा खेनहारा बेपीर ॥

पर आज की समस्याओं में आदमी इतना उलझा रहता है कि उसे कल की चिन्ता नहीं होती । अपनी सीमित शक्ति के कारण वह कालचक्र के अनन्त प्रवाह की और विस्तृत दिग्नन्त की कलगता भी नहीं कर पाता । और तो और, अपने आसपास का घटनाचक्र ही उसे इतना उलझाए रखता है कि वह अपने देश के दूर-दराज इलाकों में होने वाली घटनाओं से भी प्रायः बेखबर रहता है ।

यह कहने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि कालचक्र सम्बन्धी एक विराट समारोह अभी 'संसार की छत, लदाख की राजघानी, लेह में हुआ, पर उस पर अविकांश समाचारपत्रों की नजर नहीं गई । लदाख में हुए इस समारोह को 'न भूतो न भविष्यति' की संज्ञा दी जा सकती है ।

—चौदह हजार फुट की ऊँचाई पर दलाई लामा का कालचक्र सम्बन्धी उप-देश हो रहा है और बीस हजार लामा तथा अन्य लदाखी लोग श्रद्धाभिषूत होकर उस उपदेश को सुन रहे हैं । अकस्मात् वर्षा होने लगती है । जल-थल एक हो जाता है । दर्शक के रूप में आए अन्य लोग सर्दी के मारे कापने लगते हैं । उनके हाथ-पांव जमे जा रहे हैं । पर श्रद्धालु श्रोताओं में से एक भी अपने स्थान से नहीं हिलता । उनके घुटे हुए सिरों पर तुषार-कण मुक्ता-कणों की तरह फिसलते जा रहे हैं, उनके ऊनी और रेशमी चोगे आई हो गए हैं, पर उनकी श्रद्धा उन्हें वहाँ से हटने नहीं देती ।

अब से दो साल पहले बोध गया में भी दलाईलामा की अध्यक्षता में कालचक्र का इसी प्रकार का दीक्षा-समारोह हुआ था । उसमें भी देश-विदेश के हजारों लामा और बौद्ध लोग शामिल हुए थे । स्वयं लदाख से भी उस समारोह में सम्मिलित होने के लिए ३,००० लामा गए थे और उनमें से प्रत्येक व्यक्ति के आने-जाने में २,००० रु खर्च हुए थे ।

कालचक्र की इस दीक्षा के लिए इतनी उत्सुकता क्यों ? इसलिए कि इसमें दीक्षित होने के पश्चात् बुद्धत्व प्राप्ति का और निर्वाण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है । परन्तु सब को दीक्षा कहाँ मिल पाती है ? दीक्षा मिलती है केवल उन चन्द्र लोगों को जो इसकी कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं । शेष सब को निराश होना पड़ता है ।

महायान और बच्चयान से सम्बद्ध कालचक्र की इस तांत्रिक प्रक्रिया के तीन स्तर हैं, एक का सम्बन्ध ज्योतिष के साथ है, दूसरे का फलित ज्योतिष के साथ और तीसरे का गणित के साथ । चक्र का सम्बन्ध कदाचित् योग दर्शन में वर्णित शरीरस्थ उन आठ चक्रों से है जिनमें अभ्यास के द्वारा अलग-अलग शक्तिपात्र किया जाता है ।

योग और तन्त्र आदि से प्राप्त की जाने वाली सिद्धियों में जितनी आस्था लामा लोगों की है, उतनी शायद संसार में और किसीकी नहीं है । यह विद्या तिब्बत में गई भारत से ही थी, परन्तु भारत में अब वैसे सिद्धि प्राप्त साधकों का

लोप हो गया, जबकि लामाओं में ऐसे लोग आज भी विचमान हैं, ऐसा कहा जाता है। नालन्दा के आचार्य शान्तिरक्षित और आचार्य पद्मसम्भव इस लामा धर्म के अवर्तक के रूप में तिब्बत में आज भी पूजित हैं।

जिस तंत्र के प्रति अब पाश्चात्य देशों में रुचि दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है उसके प्रति आकर्षण का बहुत बड़ा कारण वे सिद्धियाँ ही हैं जिनकी चर्चा भौतिक विज्ञान-वेत्ताओं को भी आश्चर्य में डाल देती है। एक क्रांसीसी वैज्ञानिक ने एक आंखों देखी घटना का वर्णन इस प्रकार किया है :

एक मन का एक पत्थर पड़ा था। एक लामा ने कटोरी से कुछ गाढ़ा तेल ताम्बे की तार की कुची से उस पर छिड़का। पांच मिनट बाद उसने वह पत्थर ऐसे उठा लिया जैसे उसमें सिर्फ़ एक सेर वजन रह गया हो। फैंच वैज्ञानिक को आश्चर्य-चकित देखकर लामा ने कहा : ‘तुम्हें हमारी विद्या पर विश्वास नहीं होगा, पर देख लेना कि दो घण्टे बाद इस पत्थर का वजन फिर एक मन हो जाएगा।’ हुआ भी वैसा ही। जब उससे इसका कारण पूछा गया तो उसने बताया कि कुछ द्रव्यों के रासायनिक प्रयोग से हमने इस पत्थर की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को निश्चेष्ट बना दिया था। जिस तरह पानी से आग बुझ जाती है, या गर्मी से पानी भाप बनकर उड़ जाता है, उसी तरह रासायनिक तेल के प्रभाव से पत्थर भी हल्का हो गया।

उस फैंच वैज्ञानिक ने और भी कुछ ऐसी घटनाओं का वर्णन किया है और उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

कहा जाता है कि तिब्बतियों के ज्योतिष ग्रन्थों में उस सब घटनाचक्र की पहले से ही भविष्यवाणी कर दी गई थी जो पिछले सौ सालों में वहां घटित हुआ। उन्हीं ज्योतिष ग्रन्थों की यह भविष्यवाणी भी है कि एक दिन दलाई लामा वापस तिब्बत जाएगे। इस प्रकार की भविष्यवाणी के चरितार्थ होने के अभी कोई आसार नजर नहीं आते, पर सत्य कभी-कभी कल्पना से भी विचित्र होता है। अब भला इसमें कोई कार्य-कारण सम्बन्ध की कौन-सी शृंखला स्थापित करेगा कि इधर लहास्य में कालचक्र का समारोह प्रारम्भ हुआ और अगले ही दिन माओत्से तुंग के स्वर्गवास का समाचार आ गया। कहते हैं कि दो साल पहले बोध गया में जब ऐसा समारोह हुआ था उसीके बाद से माओ बीमार चले आ रहे थे।

काल का चक्र बड़ा विचित्र है। संस्कृत के एक कवि ने लिखा है :

सा रम्या नगरी महान्स नृपतिः सामन्त चक्रं च तत्

पाद्मं तस्य च सा विद्यवपरिषत्ताश्चन्द्रविम्बाननाः ।

उद्विक्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते चन्द्रिनस्ताः कथाः

सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपर्यं कालाय तस्मै नमः ॥

—वह रमणीय नगरी, वह महान राजा, उसका वह मंत्रिमण्डल और सामन्त चर्चा, उसके सानिध्य में एकत्रित वे चतुर जन, चन्द्र ग्रिम्ब के समान मुखों वाली वे सुन्दरियाँ, गर्वस्फीत राजकुमारों का वह भुण्ड, वे स्तुति पाठक दरबारी, वे चर्चाएँ : ये सब जिनके कारण स्मृतिशेष हो गए, उस काल को नमस्कार है।

## देवतात्मा हिमालय

लता ने वृक्ष से पूछा—“तुम यहां कबसे खड़े हो ?” वृक्ष अन्यमनस्क बना रहा । उसने प्रश्न सुना-अन्सुना कर दिया । लता ने फिर वही प्रश्न दुहराया तो वृक्ष ने छोटा-सा उत्तर दिया—“सौ वर्ष से ।”

लता आश्चर्य से आंखें फैलाकर वृक्ष को नीचे से ऊपर तक देखती रही और बोली—“तुम तो बड़े आलसी हो, सौ वर्ष में सिर्फ इतना ही ऊँचा उठ पाए ? मुझे देखो, दो महीने में ही तुम्हारे बराबर ऊँचाई तक आ गई ।” वृक्ष मन ही मन व्यंग्य से मुस्कराता हुआ बोला—“तुम सौवां लता हो जो अपनी ऊँचाई की तुलना में मेरी ऊँचाई को भंड बताकर गर्व कर रही हो । जानती हो, प्रति वर्ष सावन की रिमझिम में तुम्हारी ही तरह कोई न कोई लता मेरे पास आती रही है और यही प्रश्न पूछती रही है । पर उनमें से कोई भी कुछ महीनों से अधिक जीवित नहीं रह पाई ।”

वृक्ष लताओं से अधिक चिरजीवी हो सकते हैं, पर उनकी भी आयु अखिल कितनी ! उनसे अधिक नदियां चिरजीवी हैं । पर नदी भी विलुप्त हो जाती हैं जैसे— सरस्वती नदी और केवल इतिहास की वस्तु रह गई । नदियों से अधिक भीलें स्थायी रहती हैं । पर पुरानी भीलें गायब हो जाती हैं और नई भीलें बन जाती हैं—जैसे गढ़वाल-स्थित विरही भील भंगा की पिछली बाढ़ में नामशेष हो गई और नदियों पर बांध बनाने की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप गोविन्द सागर, नागार्जुन सागर और रेणु-कूट सागर आदि नई-नई भीलें आए दिन बनती जा रही हैं । भीलों से अधिक स्थायी हैं समुद्र और पर्वत ; और पर्वतों में सबसे अधिक स्थिर है—हिमालय ! शायद योगिराज श्रीकृष्ण ने इसीलिए कहा है :

### स्थावराणां हिमालयः ।

—मैं स्थावरों में हिमालय हूँ । सम्भव है कि ‘स्थावर’ शब्द में स्थिरता वाला भाव उतना न हो, जितना संपिण्डता का हो । इस संपिण्डता ने ही हिमालय को शैलाधिराज बनाया हो और इसीलिए श्रीकृष्ण ने हिमालय को अपने विश्व रूप का अंश अंगीकार किया हो ।

महाकवि कालिदास ने हिमालय का जैसा सटीक वर्णन ‘कुमारसम्भव’ के प्रारम्भ में किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है :—पूर्व और पश्चिम समुद्र का अवगाहन करके पृथ्वी के मानदण्ड के समान स्थित नगाधिराज देवतात्मा हिमालय उत्तर दिशा

में स्थित है। सब पर्वतों ने हिमालय को बछड़ा बनाकर उसके निमित्त से उसकी माता पृथ्वी से चमकीले रत्न और महान् औषधियां दुह लीं—और दुहने का यह काम किया दोहनदक्ष भेह ने। हिम का कितना ही अखण्ड साम्राज्य क्यों न हो, किन्तु इससे हिमालय के अनन्त रत्नों की खान होने का सीभाग्य बिल्पत नहीं होता—चन्द्रमा की किरणों के जाल में उसका काला निशान छिप ही जाता है। प्रजापति ने यह देखकर कि कृष्णसार मृगों की विचरण भूमि होने के कारण यह पर्वत यज्ञों के लिए और ऋषियों की तपस्या के लिए वहुत उपयुक्त स्थान है एवं यह वरित्री को धारण करने में समर्थ है, स्वयं इस पर्वत को 'पर्वतराज' के नाम से अभिविक्त किया है—इत्यादि।

एक अन्य कवि ने चुटकी लेते हुए कहा है :

विन्द्य भन्दर सुमेर भूभूतां यत्पतिस्तु हिनपर्वतोऽभूत् ।

ईश्वर इवशूरता प्रभावतः तद् ध्रुवं जगति जूम्भते यशः ॥

—विन्द्याचल, मन्दराचल, सुमेर आदि न जाने और कितने पर्वत हैं, किन्तु हिमालय को जो शैलाधिपति कहा गया है वह इसीलिए कि वहां महादेवीजी की, जो स्वयं ईश्वर हैं, समुराल है।

'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' के अमर गायक सर मुहम्मद इकबाल ने हिमालय के सम्बन्ध में जब यह कहा था :

पर्वत जो सबसे ऊँचा हमसाया आस्मां का ।

वह सन्तरी हमारा, वह पासवां हमारा ॥

तब जिस बात की ओर वे संकेत करना चाहते थे वह यह तो थी ही कि इस पर्वतराज की श्रुंगमाला युगों से अपलक भारत की चौकसी कर रही है, साथ ही यह भी थी कि दूर-दूर तक फैनी इसकी शाखा-प्रशाखाओं ने एक तरफ मध्य एशिया और तिब्बत की हिमवायु की सर्वताशी झंझाओं से भारत की रक्षा की है और दूसरी ओर दक्षिण-पश्चिम सागर से उठती मानसून का रास्ता रोककर इस महादेश की शस्य श्यामलता को जीवित रखा है। कितना विपर्यास है हिमालय के उस पार के प्रदेश में और इस पार के प्रदेश में? तिब्बत में सालभर में मुश्किल से १२ इंच वर्षा होती है, तो हिमालय के इस पार भारत के पूर्वी भाग में २५० इंच तक वर्षा होती है।

जरा कल्पना करिए कि हिमालय न होता तो भारत की क्या दशा होती! कहां होती गंगा-यमुना-सिन्धु-ब्रह्मपुत्र जैसी सदानीरा नदियां। नदियों के अभाव में इस कृषि-प्रधान देश की क्या दशा होती! 'उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्'—पर्वतों की कन्दराओं में और नदियों के संगम स्थलों पर (जिनका प्राचीन नाम प्रयाग है—क्योंकि यहां बड़े-बड़े यज्ञों की व्यवस्था होती थी) पनपने वाली 'सा प्रथमा संस्कृति विश्वधारा'—विश्व के द्वारा वरणीय वह प्रथम आर्य संस्कृति कहां विकसित होती? 'पृथ्वी का स्वर्ग' कहा जाने वाला यह देश हिमालय के अभाव में 'पृथ्वी का

नरक' न कहलाता !

भारतीय वाड़मय में जिस प्रकार हिमालय भारत के साथ एकात्म हुआ है, वैसा और कौन-सा पर्वत किस देश के साथ एकात्म हुआ है ? यहाँ के काव्य, पुराण, आस्थान, और जीवन-व्यवहार सब हिमालय से ओत-प्रोत हैं । कश्मीर से लेकर बर्माँ तक फैली यह गिरि-शृंखला—जो अपनी शाखा-प्रशाखाओं के साथ लगभग ५००० मील लम्बी और ५०० मील चौड़ी है, इस महादेश के साथ अविनाभाव से सम्बद्ध है और यही अखण्ड भारत का सही चित्र है जो प्रकृति ने इस भूखण्ड को प्रदान किया था ।

हिमालय चिरकाल से सो रहा था । पहले इसे राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं ने जगाया, अब वैज्ञानिक जगा रहे हैं । विज्ञान जब चन्द्रमा और भगल ग्रह तक को परत दर परत अनावृत करने पर उतार हो गया है, तब तक हिमालय को ही रहस्य-वृत कब रहने देगा ? हिमालय की भी जन्मपत्री तैयार हो रही है । इसके माता-पिता, कुल, गोत्र और सात पीढ़ियों तक की छानबीन की जा रही है और इसका भाग्य-लेख भी तैयार किया जा रहा है । इसके गर्भ में छिपे रत्नों और खनिजों की खोज के लिए वैज्ञानिक निकल पड़े हैं ।

पौराणिक प्रज्ञा ने हिमालय को समाविस्थ शिव के रूप में कल्पित किया है । शिवजी का सारा रूपक हिमालय पर घटित हो जाएगा । वे शिवजी कैलाश पर अधिष्ठित हैं । जिन ऋषियों ने यह कल्पना की है उन्होंने एक तरह से आलंकारिक भाषा में भारत की उत्तर दिशा का संकेत कर दिया है । शिव बैठे हैं कैलाश पर । और पार्वती ? पार्वती कन्या कुमारी में तपस्या कर रही हैं । उनकी तपस्या का एक ही प्रयोजन है :

जनम जनम ते रगर हमारी ।

वरहु शम्भु न तु रही कुमारी ॥

—जन्म-जन्मान्तर से मेरी एक ही आकांक्षा है : कि वर के रूप में मैं शिवजी का ही वरण करूँगी, नहीं तो आजन्म बवारी रहूँगी । [शिवजी विराजमान हैं भारत की ठेठ उत्तरी सीमा पर कैलाश में, और पार्वती विराजमान हैं ठेठ दक्षिणी सीमा पर कन्या कुमारी में । शिव और पार्वती का यह संगम ही भारत की भावनात्मक एकता की चिरन्तन साधना है ।

सर्वपल्ली ढाँ० राधाकृष्णन् ने सन् १९६५ के गणराज्य दिवस पर राष्ट्रपति पद से राष्ट्र को संबोधित करते हुए कहा था :

हिमालयं समारम्भं यावदिन्दुं सरोवरम् ।

हिन्दुस्थानमिति ल्यातं आद्यन्ताक्षरं योगतः ॥

—हिमालय से लेकर इन्दु सरोवर पर्यन्त जो भूखण्ड है वह हिमालय के आदि अक्षर 'ह' और इन्दु के अन्तिम अक्षर 'न्दु' को मिलाकर 'हिन्दुस्तान' कहता है ।

हिन्दुस्तान की ऐसी सर्वग्राह्य परिभाषा और कहाँ मिलेगी ?

## रामकथा की व्यापकता

कैसा आभागा बालक था ! इधर उसने इस जग में प्रथम श्वास लिया कि उसके साथ ही उसकी जननी अन्तिम श्वास लेकर इस जग से विदा हो गई । बालक माता के ममता-भरे आंचल की छांह छू भी न पाया कि उससे सदा के लिए वंचित हो गया । पिता अपनी प्राण-प्रिया के भौतिक देह को अरिन की भेट करके आए ही थे कि चिता की लपटों से ही भयंकर रुढ़ि-परम्परा की लपटों ने घेर लिया । लोगों ने कहा, “सद्यः जात शिशु मूलों में जन्मा है इसलिए पिता पर भारी है ।” पण्डित पिता की बुद्धि भी बौरा गई । सर्वनाश से बचने के लिए पिता ने बालक को गंगा मैया की लहरों की भेट कर दिया ।

पर किस नारी हृदय में ममतामयी माँ छिपी बैठी है, यह कौन जाने । गंगा में बहता नवजात शिशु एक नाइन के हाथ पड़ गया । उसने गंगा मैया का प्रसाद समझकर उसे सिर-माथे लगाया और अपने प्यार-भरे आंचल का चन्दोवा उस पर तान दिया ।

पर दुर्भाग्य क्या इतनी आसानी से पीछा छोड़ता है ! बालक तीन साल का भी नहीं हो पाया था कि स्वर्ग ने घरस्ती से उठा लिया नाइन को । अब कहां जाए यह अभागा शिशु ! भाग्य ने उसे सब तरह से अनाथ बना दिया ! जूठा-सूठा जहां जो कुछ मिल जाता, वही खा लेता । जहां जगह मिल जाती, वहीं सो जाता । गांव-गांव भटकता पहुंच गया शूकर क्षेत्र ।

पर दुर्भाग्य ने वहां भी पीछा नहीं छोड़ा । बालक नहीं जान पाया कि लोग उससे इतनी घृणा क्यों करते हैं । मन्दिर में कीर्तन सुना : ‘रघुपति राघव राजा राम । पतित-पावन सीताराम ।’ और अपने को पतित जान पतित-पावन की शरण में जाने के लिए राम की मूर्ति के सामने निढाल होकर गिर गया । दीपों के प्रकाश से जगमग मन्दिर में भक्तों की भीड़ ने आरती के समय अकस्मात् इस मूर्तिमान विघ्न को दृतकारा, पर मानवता के पुजारी मन्दिर के महन्त बाबा नरहरिदास को बालक की दीनता पर दया आ गई । भक्तों की वर्जना से बचाकर उन्होंने बालक को भगवान का चरणामूर्त और तुलसीदल दिया और उस अनाथ, अभागे, सर्वत्र लांछित बालक को तुलसीदास नाम दिया ।

धीरे-धीरे राम की भक्ति ने बालक का कायापलट प्रारम्भ किया । उसके

## ११२ □ फिर इस अन्ताज से वहार आई

प्रतिभा निरखने लगी। बाद में काशी में गुरुवर शेष सनातन के चरणों में बैठकर निगम और आगम का अध्ययन किया। बचपन में अबोले फिर रामबोले और बाद में तुलसीदास ने जब बोलना शुरू किया तो लोगों को उसकी वाणी में सरस्वती का वास दिखाई दिया। पर यौवन में काम और राम के मध्य जो रह-रहकर अन्तर्दृढ़ चलता रहा, उसे निर्णायक स्थिति पर पहुंचाया रत्नावली के इस कथन ने :

अस्थि चर्म मय देह मम तामें इतनी प्रीत ।

होती जो श्रीराम में, होती न तो भव भीति ॥

तुलसीदास ने तुलसीदास को तो आदर दिया, पर रत्नावली का त्याग आंखों से ओझल ही रह गया। रवि बाबू ने 'काव्य की उपेक्षिताएँ' नामक निबन्ध में शायद इसीलिए कवियों को अन्धा कहा है। रत्नावली के इस आत्मोत्सर्ग की कुछ-कुछ भलक उसीके द्वारा रचित कतिपय दुर्लभ दोहों में मिलती है, जिनमें से एक दोहा इस प्रकार है :

सुबरन पिय संग हौं लसी रत्नावलि सम कांच ।

तिहि विछुरत रत्नावली रही कांचु श्रव सांचु ॥

—मेरे प्रियतम स्वर्ण समान थे, मैं स्वयं कांच होकर भी उनके संसर्ग से बहु-मूल्य रत्नावली (कंठहार) की तरह शोभित होने लगी। पर प्रिय के बिछुड़ते ही अब यह रत्नावली सचमुच ही निरी कांच रह गई है।

जैसी हृदयद्रावक कथा तुलसीदास की है, उससे कम आदिकवि वाल्मीकि की नहीं है। वे भी तो पहले डाकू थे और रत्नाकर उनका नाम था। राजमार्ग पर लूट-मार कर अपनी जीविका चलाते थे। जिस दिन परिवार वालों ने कह दिया कि तुम्हारे पाप के हम भागीदार नहीं, उसी दिन उन्हें आत्मबोध हो गया। नारद ने उन्हें राम के नाम का जप करने को कहा। और जब एक दिन अकस्मात् वाल्मीकि के मुख से शोक के उद्गार के रूप में श्लोक फूट पड़ा, तब नारद ने ही उन्हें राम की कथा सुनाई और कहा :

न ते वाग्नूता काव्ये काचिदत्र भविष्यति ।

कुरु रामकथां पुष्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम् ॥

—तुम श्लोकबद्ध मनोरम राम कथा कहो। वह कथा इतनी पुष्यशालिनी है कि जो कुछ तुम लिख दोगे, वही सत्य हो जाएगा, तुम्हारी वाणी कभी मिथ्या नहीं होगी।

कवि के सम्बन्ध में नारद की यह कितनी बड़ी भविष्यवाणी है कि असली कवि अपनी वाणी से जो कुछ कह देता है वह कभी मिथ्या नहीं हो सकता।

रामचरित की इस विशेषता की ओर महाकवि मैथलीशरण गुप्त ने भी संकेत किया है :

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है ।

कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है ॥

राम-कथा के इतने विविध रूप हैं कि आज का आलोचक राम के अस्तित्व से ही इन्कार करने लगता है। गोस्वामी तुलसीदास के सामने भी यह विविधता आई थी, पर उन्हें न आश्वर्य हुआ, न उसकी बास्तविकता पर सन्देह। इतना ही नहीं, उन्होंने औरों के मन में भी उत्पन्न होने वाले भ्रमों का निवारण करते हुए कहा :

कल्प भेद हरि चरित सुडाए । भाँति अनेक मुनीसन गाए ॥

हरि अनंत हरिकथा अनन्ता । गावहि मुनि पुरान श्रुति संता ॥

'कल्पभेद' का यह अर्थ कालभेद और युग-भेद ही क्यों समझा जाए, स्थान-भेद और देश-भेद भी क्यों न समझा जाए! और सच तो यह है कि 'कल्प-भेद' का सीधा अर्थ है : कल्पना-भेद। अर्थात् जैसी जिसकी कल्पना-शक्ति थी वैसा ही रूप उसने राम-कथा को दे दिया। इसलिए राम-कथा में जितना अधिक वैविध्य है, वह उसकी व्यापकता की ही निशानी है, अनैतिहासिकता की नहीं।

राम की कथा इतनी उदात्त तथा जीवनदायिनी है कि जो भी इसके सम्पर्क में आया, इसका अनुरक्त बने बिना नहीं रहा। राम-कथा की इस भ्रमण कहानी का रूप अनेक प्रकार का है। उत्तर, पूर्व, और पश्चिम : ये तीन धाराएं स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। उत्तर में चीन, तिब्बत और खोतम (पूर्वी तुर्किस्तान) में वहां की भाषाओं में इस कथा से सम्बद्ध ग्रन्थ उपलब्ध हैं। जिन ग्रन्थों के वे अनुवाद हैं वे मूल ग्रन्थ भले ही भारत में लुप्त हो गए हों, पर वहां विद्यमान हैं। यह धारा लगभग नवम शताब्दी से पहले की है।

उसके बाद पूर्वी धारा प्रारम्भ होती है। उसका क्रम है : इण्डो-चीन, कम्बोडिया, थाईलैण्ड और बर्मा। इन देशों के साहित्य में राम-कथा का इतना महत्व है कि यह कल्पना भी कोई नहीं कर सकता कि उन देशों के साथ इस कथा का भौगोलिक सम्बन्ध नहीं है। इण्डो-नेशिया, थाईलैण्ड और मलाया में रामायण राष्ट्रीय काव्य के रूप में समादृत है। इण्डो-नेशिया के मुसलमानों के विवाह में भी रामायण का दृश्य अवश्य दिखाया जाता है। वहां इतना विशाल रंगमंच है कि उस पर ४०० अभिनेता एक साथ रामायण का अभिनय करते हैं। वहां की राजकुमारी रत्ना देवयानी सीता का और उसकी छोटी बहिन रत्ना बिदानारनी त्रिजटा का अभिनय करती है। थाईलैंड की अपनी अयोध्या है, अपनी लवपुरी है। एक मन्दिर में दीवारों पर पूरी रामायण अंकित है। वहां भी रामायण के किसी प्रसंग के पारायण के बिना कोई अनुष्ठान पूरा नहीं होता। वहां गही पर बैठते ही राजा का अपना नाम छूट जाता है और वह राम प्रथम, राम द्वितीय आदि कहलाने लगता है।

मलयेशिया मुस्लिम प्रदेश है पर वहां के सुल्तान की उपाधि 'राजा परमेश्वरी' और 'सिरी पादुका' है। पादुका से अभिप्राय राम की पादुका से है। कम्बोडिया में राजवंश के लोग रामायण के पात्रों का अभिनय करने में अपना गौरव समझते हैं। वहां के शासक मिस्हानुक की पुत्री राजकुमारी पुष्पा ने सीता का अभिनय करने में

## ११४ □ फिर इस अन्दाज से बहार आई

विशेष स्थाति अर्जित की थी। नेपाल और मारीशस में तो राम-कथा के प्रचार का कहना ही क्या है !

राम-कथा की तीसरी धारा पश्चिम की ओर प्रवाहित हुई। उसकी ऋमण कहानी भी कम रोचक नहीं है। १५वीं शती के बाद से जो यात्री और मिशनरी भारत आए उनके ग्रंथों द्वारा यूरोप के विभिन्न देशों में यह कथा पहुंची। डच, फ्रेंच पुर्तगाली तथा अंग्रेजी भाषा में लिखे गए यात्रा-विवरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है। सोवियत संघ के प्रसिद्ध भारत विद्याविद् प्रो० वारान्निकोव ने पूरी तुलसी रामायण का रूसी भाषा में छन्दोबद्ध अनुवाद करके तो इस दिशा में एक नया ही कीर्तिमान स्थापित किया है। राम-कथा की इस व्यापकता को देखकर यही कहा जा सकता है :

जब तक भूतल पर संस्थित है भूधर अटल सचल सदि-धार।

तब तक रामकथा इस जग में पाएगी विस्तार प्रचार ॥

## धन धन गांधीजी महाराज !

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के एक गीत का भाव है :

अज्ञान के आवरण में अपने हृदय को छिपाकर तू किस देवता की पूजा में निमग्न है ? तू आंखें खोलकर देख, देवता इस घर में नहीं हैं ।

जहाँ कृषक हल चलाकर अन्न-बीज धरती में बो रहे हैं; मजदूर जहाँ पथर तोड़कर अपने श्रम से पथ बना रहे हैं, जिनके हाथ और शरीर धूलि-धूसरित हैं :

अपने घबल वस्त्र छोड़कर तू भी उन्हीं की तरह धूल में चल ।

प्रभु ! तुम तो अपनी रचना में स्वयं बंधे हो । जहाँ अधम से अधम और दीन से दीन जन निवास करते हैं, उसी स्थान पर तुम्हारे चरण निवास करते हैं ।

तुम तो सबसे पीछे, सबसे नीचे, सर्वहारा जनों के बीच में हो ।

ऐसा लगता है कि इस गीत के एक-एक शब्द में महात्मा गांधी का जीवन बोल रहा है । महात्मा गांधी कलाकार नहीं थे, पर गरीब से गरीब और असहाय से असहाय मनुष्य के मुख पर आशा की किरण फैला देने की कला उन्हें आती थी । वे सौन्दर्य के उपासक नहीं थे, पर गांव के एक कोने में बसी झोपड़ी में हथकरघे पर कपड़ा बुनती जुलाहिन में और खेत में हल चलाते, धूप और वर्षा से नहाते, ग्रामीण-किसान में उन्हें वास्तविक सौन्दर्य के दर्शन होते थे । वे कवि नहीं थे, पर जीवन को जीने के योग्य बनाने के मार्मिक छन्दों के उद्गाता थे । वे दार्शनिक नहीं थे, पर अपने दार्शनिक विचारों को स्वयं अपने जीवन में ढालकर उन्होंने दर्शन को बुद्धि और कल्पना के आसमान से उतारकर यथार्थ के घरातल पर प्रतिष्ठित किया था । वे धर्म-प्रवर्तक नहीं थे, पर सब घर्मों के अनुयायियों ने उनमें अवतार और पैगम्बर के दर्शन किए थे । वे स्वयं को राजनीतिक कहे जाने से इन्कार करते थे, पर बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ प्रतिभा का लोहा मानते थे । वे कीमियागर और जादूगर नहीं थे, पर मिट्टी के पुतलों में रुह फूंककर उन्हें लड़ाई के मोर्चे पर भेजकर संग्राम जीतने की विद्या उन्हें आती थी । वे योद्धा नहीं थे, पर संसार को अहिंसा के माध्यम से धर्मयुद्ध सिखाने के महारथी थे । वे सन्त नहीं थे, पर सत्य को ही परमेश्वर मानकर उसकी

सतत उपासना करने वाले जगद्गुरु अवश्य थे ।

विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने कहा था : “आने वाली पीढ़ियां मुश्किल से ही विश्वास करेंगी कि कोई रक्त-मांस का ऐसा व्यक्ति भी कभी इस घरती पर चलता-फिरता था ।” फिलिप नोएल बेकर ने कहा था : “मैं आधुनिक इतिहास में ऐसे किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं जानता जिसने भौतिक वस्तुओं पर आत्मा की शक्ति को इतने जोरदार और विश्वस्त तरीके से सिद्ध किया हो और जिसने अपनी चारित्रिक शक्ति, ध्यय की पवित्रता और अंगीकृत उद्देश्य के प्रति निःस्वार्थ निष्ठा से लोगों के दिमाग पर इतना असर डाला हो ?” एक विदेशी कलाकार ने लिखा था : “किसी के जीवन-काल में गांधी रोज-रोज पैदा नहीं होते । उसके युग में जन्म लेना ही महान् सौभाग्य है ।” एक अंग्रेज महिला ने अपने हृदय के समस्त कोमल भावों को व्यक्त करते हुए लिखा था : “इस घरती पर धीरे से पांच रखो, क्योंकि इसी घरती पर गांधी का जन्म हुआ था ।”

एक बार कुछ हरिजन बन्धु अपने प्रति होने वाले सामाजिक अन्याय का प्रतिकार करने के लिए सेवाग्राम में आए । उनका इरादा था कि आश्रम में रहकर ही गांधी जी के विरुद्ध सत्याग्रह करेंगे कि आपके रहते हुए भी हमारे प्रति अन्याय होता है । गांधीजी ने उनसे कहा : “तुम लोग आश्रम में जहाँ भी रहना चाहो, जगह पसन्द कर लो । अगर तुम चाहो तो मैं अपनी कुटिया भी तुम्हारे लिए खाली कर सकता हूँ ।”

उन लोगों ने कस्तूरबा की कुटिया का एक हिस्सा पसन्द किया और उसी में डेरा डाल दिया । वा ने पूछा : “मैं कहाँ रहूँगी ?” गांधीजी बोले : “क्यों, तुझ अकेली को कौन बहुत जगह चाहिए ? किर तुझे मालूम ही है कि मैंने उन्हें अपनी कुटिया भी खाली कर देने को कहा है ।”

बा ने उलाहना देते हुए कहा : “तुम वो कहोगे ही, ये तुम्हारे बेटे जो हैं !”

“अगर ये मेरे बेटे हैं तो तेरे बेटे उससे पहले हो गए ।” और गांधीजी के इस उत्तर के सामने बा के पास निरुत्तर होने के सिवाय और कोई चारा नहीं था । पर इस दृश्य को देखकर सत्याग्रह की इच्छा से आने वाले हरिजन बंधुओं का कोप न जाने कहाँ बिलीन हो गया और वे आश्रस्त होकर चले गए ।

सन् १९२१ के आसपास की बात है । लोकमान्य तिलक का स्वर्गवास हो चुका था और राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर गांधीजी के हाथ में आई ही आई थी । उस समय सत्याग्रह आन्दोलन जोरों पर था । एक दिन एक जलूस निकला । जलूस के आगे-आगे गांधीजी और उनके दाएं-बाएं मौलाना शौकत अली और मुहम्मद अली । जलूस में भीड़ बहुत थी । अचानक एक सिख आया और उसने पूछा : “गांधी बाबा कौन है ?” किसीने उसे बताया : “यह देखो, दाएं शौकत अली है और बाएं मुहम्मद अली और बीच में बैठे हैं गांधी बाबा ।”

सिख जाट बहुत हैरान हुआ और बोला : “ये शौकत अली और मुहम्मद अली

तो किर भी कुछ समझ में आते हैं। यदि ये किसी अंग्रेज के एक घूंसा भी मार दें तो शायद वह अंग्रेज उठ न सके। पर यह गांधी बाबा, यह दुबला-पतला आदमी, यह क्या कर सकता है? मैं तो समझता था कि गांधी बाबा नाम का कोई बहुत बड़ा भैंसा है जिसके आगे अंग्रेज डर के मारे भागे जा रहे हैं। पर अगर यही गांधी बाबा है तो यह बहुत कमजोर है, यह कुछ नहीं कर सकता।”

उस सिख की बात सुनकर सब हैरान हुए। मन में हँसे भी होंगे। पर इससे भी अधिक हैरानी की बात तो अभी आगे होने वाली थी। उसी सरदार ने पास जाकर कहा : “गांधी बाबा! ज़रा पैर तो आगे बढ़ा दो, मैं इन्हें छू लूँ।”

मनुष्य जाति का इतिहास भी बड़ा विचित्र है। वह देवता को मार देती है और पाषाण-प्रतिमा की पूजा करती है। ईसा को सूली पर लटकाया गया, सुकरात को विष पिलाया गया, मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम को वन-वन भटकना पड़ा, योगिराज श्रीकृष्ण अन्त में बहेलिये के बाण के शिकार हुए, हजरत मुहम्मद साहब को अपने बतन से हिजरत करनी पड़ी और पत्थरों से मारा गया, बुद्ध को राजपाट छोड़कर दर-दर की ठोकरें खानी पड़ीं और गांधी को अन्त में गोली का निशाना बनाया गया। पर मनुष्य जाति के इस पूजा-भाव में कमी नहीं आई।

बिहार में जब चम्पारन का सत्याग्रह चल रहा था उन दिनों एक किसान गांधीजी के दर्शन करने के लिए सुदूर देहात से चलकर स्टेशन पर आया। तीसरे दर्जे के रेल के डिब्बे में चढ़ने पर उसने देखा कि एक बूढ़ा आदमी सीट पर लेटा हुआ है। उस देहाती ने उस बूढ़े को उठा दिया और स्वयं उसके पास ठसके से बैठकर अपनी देहाती भाषा में गाने लगा :

घन घन गांधी जी महाराज

नैया पार लगाने वाले ।

घन घन……

आगे जब स्टेशन आया तब ‘महात्मा गांधी की जय’ के नारे लगाती भारी भीड़ स्वागत करने के लिए उपस्थित थी। वह देहाती भी इस जय जयकार में शामिल हो गया। उसका मन प्रसन्नता से भर उठा कि आज मुझे भी गांधीजी के दर्शन होंगे। पर उस देहाती के आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने देखा कि जिस बूढ़े व्यक्ति को आराम करते-करते उठा दिया था और जिसने बड़े प्रेम से उसे अपने पास जगह दी थी, वही महात्मा गांधी है, और लोग उसीके स्वागत के लिए उमड़ पड़े हैं। वह स्वयं भी तो उसीके दर्शन करने आया था, पर अपनी नासमझी से कितनी बड़ी गलती कर बैठा। अब उसे काटो तो खून नहीं। आत्मग्लानि से भर उठा और आंखों में आंसू भरकर, गांधीजी के चरणों में झुककर वह बारंबार क्षमा मांगने लगा। गांधीजी की सहज मुस्कान में उसकी सब ग्लानि बह गई।

गुरुदेव की कविता से बात प्रारम्भ की थी। फिर गुरुदेव की कविता ही मन

११८ — फिर इस अन्दाज से बहार आई

के तार भनभना रही है :

तोमार कीर्ति र चेये  
तुमि जे महत्  
ताह जब जीवानेर रथ  
पश्चाते फेलिया जाय  
कीर्ति र तोमार बारंबार ।

—तुम अपने यश की अपेक्षा भी जो महान् हो, इसीलिए तुम्हारे जीवन का रथ पीछे छोड़ जाता है तुम्हारी कीर्ति को बारंबार ।

## करि फुलेल को आचमन

पुरानी दिल्ली की पतली और संकरी गलियाँ। इत्र, काजल और तरह-तरह की खुशबूआँ की छोटी-सी दुकानें। आहक एक विदेशिनी। दुकानदार ने जब कुछ चीजें दिखाईं तो विदेशिनी के चरणों तले जैसे संसार भर का खजाना लोटने लगा। वह खुशी के मारे चिल्ला उठी : “वाह ! कितनी सुन्दर ! इन भारतीय शृंगार प्रसाधनों को संसार की कोई वस्तु मात नहीं दे सकती ।”

वह विदेशिनी लन्दन से दिल्ली आई थी। लन्दन में उसने एक शृंगारिक (ब्युटी सैलून) खोल रखी है जिसमें वह राजाओं-रानियों और बड़े-बड़े अमीरों का सौन्दर्योपचार करती है। वह केवल भारतीय जड़ी-बूटियों, तेलों और सुगन्धों का ही प्रयोग करती है। लन्दन और पेरिस के फैशनेबिल युवक-युवतियाँ उसके यहाँ सौन्दर्योपचार के लिए जाने को लालायित रहते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि वह क्रीम-पाउडर-लोशन-लिपस्टिक आदि आधुनिक शृंगार-सामग्री का, जिस पर लाखों-करोड़ों डालर प्रति वर्ष खर्च होते हैं, बिल्कुल प्रयोग नहीं करती। उसका दृढ़ विश्वास है कि शीशी-डिब्बे या मर्तबान में रखे पदार्थों से सौन्दर्य प्राप्त नहीं हो सकता, और जितने भी ब्यूटी-सैलून हैं, वे लोगों को बेवकूफ बनाते हैं।

सच तो यह है कि कार्यिक, वाचिक और आध्यात्मिक सौन्दर्य का जिस प्रकार शास्त्रीय विवेचन भारत में हुआ है, वैसा अन्यत्र शायद कहीं नहीं हुआ। इस सौन्दर्य-शास्त्र का ही एक अंग है गन्धशास्त्र। वह भी भारत की ही देन है। ‘इन्साइक्लोपीडिया आफ ब्रिटानिका’ के अनुसार पाश्चात्य विद्वानों ने स्वयं इसे स्वीकार किया है। मिस्र के पिरामिडों की खुदाई में जो सुगन्धित द्रव्य मिले हैं, वे भारतीय बतलाए जाते हैं। बाइबिल में पूर्व की गन्धों की कई जगह चर्चा है। यहूदी और ईसाई दोनों ही उपासना में धूप का प्रयोग करते हैं। प्राचीन यूनान के लोग भारतीय गन्धों के इतने शौकीन थे कि जब उस पर व्यय होने वाला काफी पैसा यूनान से बाहर जाने लगा, तब स्वयं सलोमन ने पुरुषों द्वारा गन्धों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया, केवल स्त्रियों को उसके प्रयोग की छूट रही। रोम के लोग भी भारतीय गन्धों के बड़े शौकीन थे। अरब देशों के लोग तो आज भी इसके बड़े शौकीन हैं। अपनी तेल-सम्पदा के कारण नव समृद्ध शेखों-अमीरों और शाहों ने इन गन्धों का किस फराखदिली से प्रयोग करना प्रारम्भ किया है, इसका उदाहरण एक भारतीय राजदूत ने बताया है। इस राजदूत को अरब के एक शेख ने अपने यहाँ

खाने पर बुलाया तो हाथ धोने के लिए पानी के स्थान पर इत्र का प्रयोग किया गया।

कहते हैं कि जब जहांगीर और नूरजहां की शादी हुई तो इतना गुलाबजल चला कि बगीचे में उसका नाला बह चला। नूरजहां को उसमें कुछ तेल सरीखा तत्त्व छहराता नजर आया तो उसने उसे संग्रह करने का हुक्म दिया। तभी से इत्र निकालने का रिवाज चला। इस इत्र का सम्बन्ध केवल शृंगार और प्रसाधन से ही नहीं है, हकीमों ने तरह-तरह के इत्रों से तरह-तरह के रोगों का इलाज करने की भी पद्धति ईजाद कर ली है। कितने ही ऋतार इत्रफरोशी के साथ हिक्मत का भी काम करते हैं।

सुगन्धोत्पादक द्रव्यों में चन्दन का बहुत महत्व है। चन्दन का लेप भारतीयों को कितना प्रिय है, इसकी फलक आज भी कभी-कभी धार्मिक समारोहों में देखने को मिल जाती है, जब प्रत्येक आगन्तुक के मस्तक पर चन्दन के लेप से आतिथ्य किया जाता है। विभिन्न भाषाओं में चन्दन के लिए जितने शब्द प्रयुक्त होते हैं वे प्रायः 'चन्दन' के ही रूपान्तर हैं। जैसे लातीनी में 'लंतलम', फ्रांसीसी में 'सन्तल', अंग्रेजी में 'सेंडल', अरबी और फारसी में 'सन्दल', जापानी में 'सन्दल' और बर्मी में 'सन्दकु'। यह भी इसी बात का प्रमाण है कि सारे संसार में चन्दन भारत से ही गया है। संस्कृत-साहित्य में तो चन्दन के साथ-साथ वह मलयगिरि भी प्रस्तुति का पात्र बन गया जिस पर चन्दन का पेड़ पैदा होता है। कवि का कहना है :

कि तेन हेमगिरिणा रजताद्रिशणा वा  
यत्राधितास्तु तरवः तरवस्त एव ।  
मन्यामहे मलयमेव यदाक्षयेण  
कंकोल निम्नकुटजा श्रिष्ट चन्दनाः स्युः ॥

—उस चांदी के पहाड़ (कैलाश) और सोने के पहाड़ (सुमेरु) से क्या लाभ जहां जिस जाति का वृक्ष खड़ा है वह उसी जाति का बना रहता है। हम तो उस मलयाचल की महिमा को ही स्वीकार करते हैं जहां कंकोल, नीम और कुटज जैसे पेड़ भी चन्दन के संसर्ग से चन्दन बन जाते हैं।

बात चल रही थी गन्ध की। महाभारत में गन्ध के दस भेद बताए गए हैं। महाभारत में ही यह भी लिखा है कि जब महाराज युधिष्ठिर युद्ध में विजय प्राप्त कर हस्तिनापुर पहुंचे तब राजमार्गों पर धूपों की सुगन्धि फैलाई गई और राजप्रासाद के चारों ओर सुगन्धित चूर्ण बिखेरे गए। 'शार्ङ्गधर संहिता' में अंगवास के लिए यह नुस्खा मिलता है : 'यदि सफेद चन्दन, इलायची, तेजपत्र, खस और तगर को देर तक जल में डुबोकर, फिर निथारकर, वह जल पिया जाए तो शरीर से बराबर सुगन्धि निकलती है।

परन्तु क्या शरीर को इस प्रकार नाना उपायों से सुगन्धित करने पर भी शरीर की अपनी मूल गन्ध नष्ट हो सकती है? वैज्ञानिकों का कहना है—नहीं। नये

अनुसन्धानों के अनुसार अन्य जीवित प्राणियों की तरह मनुष्य भी अनेक तरह कीं मन्ध उत्पन्न करता है और यह गन्ध प्रायः हरेक मनुष्य की होती है। तभी तो जिस स्थान पर अपराध हुआ हो और उस स्थान पर अपराधी की अगर कोई चीज छूट जाए, तो उसे सूंधकर कुत्ता मीलों दूर स्थित अपराधी को पकड़वा देता है। इस गन्ध का मुख्य स्रोत है हथेलियों और तलवरों की स्वेद ग्रन्थियाँ और उनसे निकलता पसीना। अब वैज्ञानिकों ने कुत्तों की द्वाण शक्ति से भी हजारों गुना अधिक संवेदनशील ऐसे गन्धविश्लेषक तैयार कर लिए हैं जो किसी मनुष्य की गन्ध से युक्त कमरे की वायु का नमूना लेकर उसे दो वर्ष तक उचित पात्र में सुरक्षित रख सकेंगे, उसका विश्लेषण कर सकेंगे और उस व्यक्ति को पहचान करेंगे।

यह गन्धपुराण कहीं आवश्यकता से अधिक विस्तृत न हो जाए, इसलिए मुझे की वात अभी से कहूँ देनी चाहिए। वह विदेशिनी भारतीय गन्धों पर और शृंगार-प्रसाधनों पर लट्ठू है, परन्तु भारत की फैशनेबिल महिलाएं विदेशों से आने वाले शृंगार-प्रसाधनों पर लट्ठू हैं। इस बिडम्बना में जीवन की जो कस्ता छिपी है, उसे देखते हुए एक प्रसंग स्मरण आ रहा है :

इंग्लैण्ड के एक प्रसिद्ध डाक्टर के यहां एक रोगी आया। रोगी ने डाक्टर से कहा : “डाक्टर साहब ! मैं बहुत परेशान हूँ। मुझे रात-रातभर नींद नहीं आती। बहुत बार मेरी इच्छा होती है कि आत्महत्या कर लूँ। पता नहीं मुझे क्या हो गया है। जब भी मैं अकेला होता हूँ तब जीवन के प्रति मुझे यही विरक्ति घेर लेती है।”

डॉक्टर ने रोगी की अच्छी तरह जांच की और फिर गम्भीरता से कहा : “आपको कोई रोग नहीं है। मैं आपको कोई दवाई बताऊँ इसके बजाय अच्छा है कि आप स्वयं आनन्दमय वातावरण में रहने के लिए प्रतिदिन कुछ समय ब्रिटेन के प्रसिद्ध हास्यकार ग्रीमाल्डी के पास जाकर बैठा करें।”

उस रोगी ने विषादपूर्ण स्वर में कहा : “अरे डॉक्टर साहब, मैं स्वयं ही तो ग्रीमाल्डी हूँ।”

यहां तो सबको हँसाने वाला ग्रीमाल्डी ही बीमार है :

रे गन्धी मति अन्ध तू अतर दिखावत काहि ।

करि फुलेल को आचमन भीठो कहत सराहि ॥

## तुलसी भीतर बाहरे हु जो चाहेसि उजियार

एक बार एक गरीब आदमी पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब के थास आया और रोटी खरीदने के लिए उनसे पैसे मांगने लगा। पैगम्बर साहब ने उससे पूछा—“तुम्हारे पास क्या-क्या चीज़ है ?” वह आदमी बोला—“हुजूर में कंगाल आदमी, मेरे पास क्या हो सकता है ?” फिर भी मेरे पास एक फटा-पुराना टाट और एक गिलास है ।” पैगम्बर साहब ने कहा—“वह टाट और गिलास ले आओ, देखूं तो वे कैसे हैं ?” वह आदमी अपनी भोजड़ी में गया और दोनों चीजें ले आया। हजरत मुहम्मद साहब ने उन दोनों चीजों को दो दिरम (अरब देश में प्रचलित सिक्का) में बेच डाला। फिर उस आदमी के हाथ में दो दिरम रखकर पैगम्बर साहब बोले—“भाई ! इनमें से एक दिरम की रोटी खरीदना और एक दिरम की कुल्हाड़ी खरीदना। कुल्हाड़ी से लकड़ी काटकर बेचना और अपनी रोटी कमा लेना ।”

बिना श्रम के श्री की प्राप्ति की कामना ही सामाजिक विषमता की जड़ है और यह विषमता ही मानव जाति की अशान्ति का कारण है। यह ठीक है कि सब मनुष्यों की योग्यता एक समान नहीं होती। पर कितनी बड़ी विडम्बना है कि जो अधिक श्रम करता है, वही अधिक शोषण का शिकार होता है। सारी चतुराई इसी बात में समझी जाती है कि अधिक से अधिक मानवों के अधिक से अधिक श्रम का जो अधिक से अधिक शोषण कर सकता है, वही अधिक से अधिक समृद्धि प्राप्त करता है।

लॉक ने कहा था कि सारी समृद्धि श्रम की उपज है और साइरस ने कहा था कि कोई भला आदमी अकस्मात् घनी नहीं बन सकता। परन्तु बिना श्रम के यकायक समृद्धि के प्राप्ताद में प्रवेश करने वाले के साथ एक दुर्भाग्य भी सदा लगा रहता है। जो घन जितनी आसानी से आता है, वह उतनी ही आसानी से चला भी जाता है।

अभी पिछले दिनों इटली के एक घनपति ने हवाई जहाज में चढ़कर हजार-हजार और पांच-पाँच हजार लिरा के नोटों की वर्षा करनी शुरू कर दी। उन नोटों की लूट के लिए ऐसी आपाधापी मच्ची कि सड़कों पर यातायात ही अवरुद्ध हो गया। जब तक पुलिस आई, तब तक सड़कों पर से नोट भी गायब और आसमान से हवाई जहाज भी गायब।

यों नोट लुटाने वाले उस घनपति के मन में यह सनक क्यों सवार हुई, यह

कहना कठिन है। पर इतना असन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि इस घन के पीछे उस घनपति के श्रम-सीकरों का सर्वथा अभाव था, अन्यथा इस घन की यों दुर्गति न होती। किसी सुपात्र को शुभ कार्य के लिए घन का दान करना अलग बात है, पर इस तरह घन को लुटाना बिल्कुल अलग बात है। शादी-ब्याह में या किसी अन्य पारिवारिक समारोह में क्षणिक वाहवाही लूटने के लिए और अपनी शान दिखाने के लिए फिजूलखर्ची या तरह-तरह का दिखावटी आडम्बर भी श्रमविहीन सम्पत्ति की ही प्रकारान्तर से धोषणा करना है।

उपनिषद के ऋषियों ने कहा है :

ताश्रान्तस्य सत्याय देवाः ॥

नाना श्रान्तस्य श्रीरस्ति ॥

—जो व्यक्ति श्रम नहीं करता, देवता भी उससे मित्रता नहीं करते। जो श्रम नहीं करता, उसे श्री प्राप्त नहीं होती।

इतना ही क्यों, ऐतरेय उपनिषद् के श्रम की महिमा बताने वाले शाश्वत श्रम-गीत 'चरैवेति चरैवेति' में इसका उदाहरण है :

सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन् ।

—ज़रा सूर्य का परिश्रम तो देखो जो चलते-चलते कभी थकता ही नहीं।

भारतीय संस्कृति में जिन चार आश्रमों की ओर चार वर्णों की व्यवस्था की गई है, वह भी श्रम विभाजन का ही रूप है। आश्रम का अर्थ ही है आ=समान्तात्-श्रम अर्थात् सब ओर से श्रम ही श्रम। और 'वर्णोवृणोते:' अर्थात् जिसने जिस कर्म को अपने लिए चुन लिया, वही उसका वर्णन बन गया। पर जैसे खटमल को औरों का खून चूसने में आनन्द आता है, वैसे ही कुछ लोगों को औरों का श्रम चूसने में आनन्द आता है। शायर की बात याद आती है :

कितने गुलों का खून हुआ तो क्या गरज ।

उनके गले का हार तो तैयार हो गया ॥

श्री और श्रम की चर्चा का प्रसंग आज इसलिए आ गया कि दीपावली का पर्व आ रहा है और इस अवसर पर लक्ष्मी पूजन की परम्परा है। श्री और लक्ष्मी दोनों पर्यायवाची हैं।

दीपाली के दिन घनान्वकार से ग्रावृत्त अमा निशा में जब आसेनु हिमाचल दीपों की पंक्ति जगमगा उठती है, तब कश्मीर से कन्याकुमारी तक और कच्छ से कोहिमा तक यह अद्भुत ज्योति-रेखा जन-जन के मन की कैसी सांस्कृतिक एकता का परिचय देती है। पर रवि बाबू ने नगर-नगर और डगर-डगर की इस दीपमाला से आह्लादित होकर भी अपने मन की व्यथा यों प्रकट की थी :

पर दीपमाला नरे नगरे

तुमि जे अन्धार

तुमि से अन्धार ।

—दूसरों की दीपमाला नगर-नगर में चमक रही है, तुम तो जिस अंधेरे में थे उसी अंधेरे में हो ।

पर यह मानसिक व्यथा उस समय की है जब यह देश पराधीन था । उस समय तो सचमुच नगर-नगर में 'पर-दीपमाला' ही थी । प्रश्न यह है कि क्या आज भी इस दीपमाला में 'पर' का अंश नहीं है ? जब तक भारत के घनिक, शिक्षित और समर्थ समुदाय में विदेशी वस्तु, विदेशी तकनीक, विदेशी सभ्यता और विदेशी भाषा के प्रति भोग विद्यमान है, तब तक कैसे कहें कि वह 'पर-दीपमाला' नहीं है ?

इस विदेशिनी का आर्कषण बड़ा जबर्दस्त है । इसके नैनों की मार से बड़े-बड़े घुरंघर घराशायी हो चुके हैं । राष्ट्रपिता महात्मा गांधी अंग्रेजियत को इस देश से निकालना चाहते थे, पर वह तो अंग्रेजों के जाने के बाद और भी अधिक उग्र रूप से हमारे मन-प्राण पर छा गई । मस्तमौला फकीर कबीर की तरह अब कौन कहे :

ठगिनी क्या नैना भमकावै ।

तेरे हाथ कविरा न आवै ॥

या

माया तो ठगनी तनी ठगत किरे सब देश ।

जा ठग ने ठगनी ठगी सो ठग को आदेश ॥

दीपावली का सम्बन्ध श्रीराम के अयोध्या-आगमन से भी है । विजयादशमी के दिन श्रीराम ने दशानन को परलोक भेज दिया । उसके बाद विभीषण का राज-तिलक हुआ । सिंहासन पर आरूढ़ होते ही विभीषण ने विजेता राम के स्वागत-सत्कार और मनोविनोद के लिए तरह-तरह के आयोजनों की तैयारी की, पर श्रीराम ने उन सबसे विरक्ति प्रकट करते हुए कहा :

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्षण रोकते ।

जननी जन्मभूमिश्च स्वगर्दपि गरीयस्ते ॥

—हे लक्षण ! यह लंका सोने की है, आमोद-प्रमोद और विलासहास के साधनों से भरपूर है । पर यह मुझे अच्छी नहीं लगती । मुझे तो अपनी जननी और जन्म-भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर लगती है । और राम यह कहकर स्वर्णमयी लंका से अयोध्या के लिए रवाना हो गए ।

इस प्रकार राम के अयोध्या-आगमन की प्रतीक यह दीपावली, जननी जन्म-भूमि का, अर्थात् स्वदेशी की उपासना का ही तो पर्व है ।

गोस्वामी तुलसीदास कह गए हैं :

राम नाम मणिदीप धर जीह देहरी द्वार ।

तुलसी भीतर बाहरेहु जो चाहेसि उजियार ॥

—अरे तुलसी ! अगर भीतर और बाहर दोनों ओर उजियारा चाहता है तो जननी जन्मभूमि के उपासक इस राम रूपी मणिदीप को अपनी जीभ की देहरी के द्वार पर रखकर तो देख ।

तुलसी ! —अर्थात् हे भारतवासी !

## अन्न का पर्वत कहां है ?

सुखाराम गणेश देड़स्कर अपने समय के भराठी के प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार थे। एक बार वे अपने दो मित्रों के साथ स्वामी वनेकालन्द से मिलने गए। ब्रातचीत के दौरान स्वामीजी को पता लगा कि आगन्तुक सज्जनों में एक पंजाब निवासी भी है। उन दिनों पंजाब में अकाल पड़ा हुआ था। स्वामीजी अकाल-पीड़ितों के प्रति चिन्तातुर होकर पंजाबी सज्जन से अकाल राहत कार्यों के बारे में बात करते रहे। विवा होते समय पंजाबी सज्जन ने विनयपूर्वक स्वामीजी से कहा—“महाराज ! मैं तो आपके पास इस आशा से आया था कि कोई गहरा दार्शनिक और आध्यात्मिक उपदेश सुनने को मिलेगा, पर आप तो सामान्य दुनियादारी की बातें ही करते रहे, कुछ ज्ञान तो मिला नहीं।”

स्वामीजी अणभर चुप रहे और फिर गम्भीर होकर बोले, “भाई ! जब तक मेरे देश में एक छोटा बच्चा भी भूखा है, तब तक उसे खिलाना और उसकी सार-संभाल करना ही सबसे बड़ा धर्म है। इसके सिवा जो कुछ है, वह भूठा धर्म है। जिनका पेट खाली है, उनके सामने धर्म और अध्यात्म का उपदेश निरान्त दम्भ है। पहले भूखे को रोटी का टुकड़ा देने का प्रयत्न करना चाहिए।”

पेट की आग कैसी होती है इसे वे लोग नहीं जानते जो चांदी की चम्मच मुँह में लेकर पैदा होते हैं। ‘जाके पैर न फटी विवाई, सो क्या जाने पीर पराई।’ गोस्वामी तुलसीदास अपने वचपन में इस माहोल से गुजरे थे, इसलिए उन्हें पेट की आग का बखूबी तजुर्बा था। ‘कवितावली’ में गोस्वामी जी लिखते हैं :

किसबी, किसान-कुल वनिक, भिखारी भाट,  
चलकर चपल, नट, चोर, चार, चेटकी।

पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,

अटत गहन-वन अहन अखेटकी ॥

ऊंचे नीचे कदम, घरम-अघरम करि  
पेट ही को पचत, बेचत बेटा बेटकी।

‘तुलसी’ बुझाइ एक राम घनस्याम ही ते

अन्न बड़वार्गि ते बड़ी है आग पेट की ॥

पेट की आग ने बड़े-बड़ों का ईमान बिगाड़ दिया है और उनका अभिमान

१२६ □ फिर इस अन्दाज से बहार आई

भंग कर दिया है। संस्कृत के कवि के अनुसार :

इयमुदरदरी दुरन्त पूरा  
यदि न भवेदिभान भंगभूमि……

—रोज भरने पर भी रोज खाली हो जाने वाला यह पेट का खड्ड यदि आदमी का घमण्ड चूर-चूर करने वाला न होता तो यह दो दौर का शैतान खुदा को भी अपने सामने कुछ न समझता। पर अब तो उस लीलाघर ने ऐसी बला आदमी के साथ लगा दी है कि उसे झक्ख मारकर 'प्रभु' के सामने गिड़गिड़ाना पड़ता है। परन्तु प्रभु सुनता कहां है! जैसे उसने प्रकृति में विषमता उत्पन्न की है, वैसे ही मानव-जगत् में भी भयंकर विषमता पैदा कर दी है। प्रकृति में कहीं हिमालय जैसे ऊंचे पर्वत हैं, तो कहीं महासागरों जैसे गहरे गर्त भी। मानव-जगत् में भी कहीं घन के अम्बार लगे हैं तो कहीं लोग दाने-दाने को मोहताज हैं। यही विषमता अशान्ति की जड़ है।

यों सारी मानव जाति एक इकाई है। भगवती श्रुति ने कहा था :

अज्ञेष्ठासौ श्रक्निष्ठास एते संभ्रातरो वावृथः सौभग्याय ।

—इस मानव-समुदाय में कोई किसीसे छोटा नहीं, कोई किसीसे बड़ा नहीं, सब आपस में भाई-भाई हैं। सब मिलकर अम्बुद्य के लिए आगे बढ़ें। अन्य धर्मों की भी यही शिक्षा है :

यह पहला युवक था किताबे-खुदा का  
भल्लूक सारी हैं कुनवा खुदा का ।

—कुराने-मुकद्दस का पहला सबक यही था कि सारी मानव-जाति परमात्मा का परिवार है। पर मानव धर्म का जितना अधिक नाम लेता है, उस पर आचरण करने से उतना ही अधिक दूर भागता है।

पेट की आग वाली बात लीजिए न! संसार में न इतने अन्न की कमी है, न इतने घन या अन्य साधनों की—कि संसार की इस समय जितनी आबादी है वह सुखपूर्वक और शान्तिपूर्वक न रह सके। परवरदिगार की ओर से यह पृथ्वी नामक ग्रह इस लायक अवश्य बनाया गया है कि आदमी भूखा न रहे।

हरेक आदमी का मुंह एक और हाथ दो होते हैं—यह भी तो इसी बात का संकेत है कि दोनों हाथ मिलकर श्रम करें तो एक मुंह को भरना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं। पर जब दोनों हाथ खाली रहें, उनके लिए रोजगार और काम-धन्धे की व्यवस्था न हो और तब जबर्दस्ती मुंह बन्द करने की बात सोची जाए—तो इसमें कितनी दूरदर्शिता है!

एक अरब सौदागर सफर के लिए निकला। राहखर्च के लिए हीरे-जवाह-रात से भरी एक थैली उसने अपने साथ ले ली। बस्ती से दूर निकल गया सौदागर। निर्जन मरु-प्रदेश प्रारम्भ हो गया। हिम्मत कर आगे बढ़ता रहा। मन में निश्चिन्त था कि मेरे पास रत्नों की थैली है, एक-एक रत्न से महीनों का राशन-पानी खीरीद

सकता हूँ। पर जब उसे व्यास ने सताया तो वहां न पानी था, न पानी देने वाला। आखिर सौदागर बेहोश होकर वहीं तपती रेत पर गिर पड़ा और रत्नों से भरी अपनी थैली को हसरत-भरी निगाहों से देखता रहा। एक भी रत्न उसके काम न आया।

संस्कृत के कवि ने कहा है :

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्न सुभाषितम् ।

मुद्रा पाषाणखण्डेषु रत्नशंक्ता विचीयते ॥

—पृथ्वी पर तीन ही रत्न हैं : जल, अन्न और मुद्रा। बाकी सब तो पत्थर के टुकड़े हैं। पता नहीं, उन पाषाण-खण्डों को लोग रत्न कहकर क्यों पुकारते हैं!

शास्त्रकारों ने अन्न को ब्रह्म कहा है :

अन्ने ब्रह्मेति ध्यजानात्, तस्मादन्नं न निन्दात् ।

—अन्न को ब्रह्म समझो। अन्न ब्रह्म है, इसलिए उसकी निन्दा न करो। अन्न से जैसी तृप्ति होती है, वैसी संसार के किसी पदार्थ से नहीं होती। उसी तृप्ति को ब्रह्मानन्द कहना चाहिए।

अन्न अन्न क्यों कहलाता है, इसकी भी व्याख्या की गई है :

अद्यते अत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते ।

—वह खाया जाता है और वह स्वयं भी प्राणियों को खा जाता है, इसलिए इसको अन्न कहते हैं। अन्न खाया जाता है—यह तो सभी जानते हैं, पर अन्न प्राणियों को खा भी जाता है, यह और भी जोरदार बात है। जो लोग आवश्यकता से अधिक भोजन करते हैं, उन्हीं से आज संसार के अस्पताल भरे हुए हैं। अन्न उनको खा गया। संसार में भुखमरी से उतने लोग नहीं मरते, जितने ज्यादा खाने से मरते हैं। यह भी विचित्र विडम्बना है !

दीपावली के पश्चात् श्रद्धालु जन अन्नकूट का पर्व मनाते हैं। क्या सचमुच कहीं अन्न का कोई पर्वत विद्यमान है ? वह अन्न का पर्वत अगर कहीं है तो संसार में कहीं भी भुखमरी क्यों ?

न सही अन्न का पर्वत, उस बहाने से अन्न-पुराण की यह कथा तो हाजिर है। इस कथा से किसीके पेट की आग बुझाने की गारण्टी नहीं है, पर कथा समाप्त होने से पहले कथागुरु का यह उपदेश श्रवण करने से पुण्य लाभ अवश्य होगा :

यावद् भ्रियते जठरे तावत् स्वत्नं हि देहिनाम् ।

अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमहृति ॥

—मनुष्य का अधिकार उतने ही अन्न पर है जितने से उसका पेट भर जाए, इससे अधिक को जो अपना मानता है वह चोर है और दण्ड का पात्र है।

## गणेशजी से विनम्र प्रार्थना

एक बार इन्द्र ने ब्रह्माजी से पूछा कि इस वरित्रीतल पर सारभूत वस्तु क्या है ? ब्रह्मा जी ने अपने चारों मुखों से एक साथ कहा : तमाखू, तमाखू, तमाखू, तमाखू :

**बिडौजा:** पुरा पृष्ठवान् पद्मयोर्न वरित्रीतले सारभूतं किमस्ति ।

**चतुर्भुर्भुखेरित्यवोचद् विरचिः** तमाखुस्तमाखुस्तमाखुस्तमाखुः ॥

किसी तमाखू-भक्त कवि ने भले ही उपहास में ही तमाखू की यह अतिशयोक्ति-परक प्रशस्ति की हो, परन्तु किसी राजा ने जब एक अन्य कवि से पूछा कि मैं किसका भजन-पूजन करूं, तो उसने भी छूटते ही राजा को उपदेश दिया :

**तमाखुं भज राजेन्द्र !**

—हे राजन ! तमाखू का सेवन करो । किन्तु राजा ने तमाखू का सेवन प्रारम्भ करने से पहले अपने राजगुह से और परामर्श किया । तब राजगुह ने राजा को समझाया कि ‘आखु’ का ग्रथ है : आखु-वाहन गणेश जी । प्रत्येक कार्य के आरम्भ में विघ्नों के शमन के लिए विघ्न-विनाशक गणेश जी के पूजन का शास्त्रीय विधान है । गणेश जी की पूजा करो ।

महाकवि कालिदास को सामान्य-जन-सुलभ बनाने वाले अद्भुत टीकाकार मत्लिनाथ ने गणेश जी की स्तुति में शब्दलालित्य से परिपूर्ण श्लोक लिखा है :

**वन्दारु जनमन्दारं इन्दुभूषणं नन्दनम् ।**

**अमन्दानन्दं सन्दोहं बन्धुरं सिन्धुरानननम् ॥**

—भक्तजनों के लिए कल्पवृक्ष के समान, शिवसुत, अत्यन्त आनन्द के भण्डार होने के कारण सबको सुन्दर लगाने वाले, गजवदन गणेश जी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

एक अन्य कवि ने गणेश जी का वर्णन करते हुए गणित का चमत्कार दिखाया है :

**एकरदं द्वै मातुरं निस्त्रिगुणः चतुर्भुजोऽपि पंचकरः ।**

**जय षष्मखनुनतं सप्तच्छदं गन्धमदाष्टतनतनय ॥**

—गणेश जी का दांत एक है, माताएं दो हैं (पार्वती और जाह्नवी), तीव गुणों से वे रहित हैं, चतुर्भुज होते हुए भी वे पांच हाथों वाले हैं (पांचवां हाथ है : सूँड), छह मुख वाले कार्तिकेय के भाई हैं, हाथी का मस्तक होने के कारण मद में सप्तपर्ण की गन्ध आती है और अष्टमूर्ति शिव के वे तनय हैं, : इस प्रकार एक से

आठ तक की संख्याओं से युक्त उस विघ्नेश्वर की जय हो ।  
गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी 'विनय-पत्रिका' के प्रारम्भ में गणेश जी की स्तुति करते हुए कहा :

गाइये गनपति जगवंदन संकर सुवन भवानी नंदन ।  
सिद्धिसदन गजबदन विनायक कृपा सिंघु मुन्दर सब लायक ।  
मोदकप्रिय मुद मंगलदाता विद्यावारिधि बुद्धि विद्वाता ।  
मांगत तुलसीदास कर जोरे बर्साहूं राम सिय मानस मोरे ॥

इस प्रकार किसी भी शुभ कार्य के प्रारम्भ में गणेश-पूजन की परम्परा इतनी रुढ़ हो गई है कि अन्ततः 'श्रीगणेश' और 'प्रारम्भ' दोनों शब्द पर्यायवाची मान लिए गए ।

लेख का श्रीगणेश जिस 'आखु' से हुआ है, गणेश-वाहन वे मूषकराज ही इस समय भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के लिए सबसे अधिक चिन्ता के विषय बन गए हैं । परिषद् ने जो प्रथम देशव्यापी कार्यक्रम बनाया है उसे चूहा-उन्मूलन अभियान की संज्ञा दी जा सकती है । क्या परिषद् वाले गणेश जी की महिमा को तहीं मानते अन्यथा गणेश जी के वाहन के लिए वे इस प्रकार लगुडहस्त न होते । इतना तो सोचते कि मूषक महाराज के अभाव में तुन्दिल और भारी भरकम शरीर वाले गणेश जी क्या भक्तजनों की पूजा ग्रहण करने के लिए पदयात्रा करते हुए आएंगे ?

कृषि अनुसंधान परिषद का चूहों के प्रति यह कोप अकारण नहीं है । वाल्ट डिस्ने ने 'मिकी माउस' की कार्टून फिल्म बनाकर बच्चों और बुजुर्गों के दिलों में चूहे के लिए कितना ही कोमल भाव पैदा क्यों न कर दिया हो, और साहित्य में भले ही उसे मानव के शत्रु के रूप में कहीं भी विचित्र न किया गया हो, पर खाद्याभाव के संकट से ग्रस्त संसार ने अब यह पहचान लिया है कि चूहों के रहते मानव-जाति कभी भरपेट भोजन नहीं पा सकती ।

जितना भी अनाज पैदा होता है, उसका १५ प्रतिशत भाग चूहे खा जाते हैं । इस समय संसार में चूहों की २,००० जातियाँ हैं, और एक मूषक-युगल एक साल में कई हजार नये चूहे पैदा कर देता है । भारत में यदि प्रति सेकण्ड एक मानव-शिशु जन्म लेता है तो उसी एक सेकण्ड में ६० नये चूहे पैदा हो जाते हैं । इस समय देश भर में खेत-खलिहान और घरों में कुल मिलाकर, बहुत संकुचित अनुमान के अनुसार, ६ अरब चूहे हैं, अर्थात् भारत की जितनी आबादी है, उससे दस गुने । हालांकि भारत जैसे विशाल देश में कुल चूहों की गणना करना आसान काम नहीं है, पर हरेक घर में औसतन ५ से १० चूहों तक का अस्तित्व सामान्य बात है ।

अकेले उत्तर प्रदेश में ६० करोड़ चूहे एक वर्ष में उतना अनाज खा गए जितने से उसी अवधि तक १० हजार लोगों का पेट भर सकता था । खरीफ के मौसम में चूहों ने सौराष्ट्र की मूँगफली की सारी फसल चौपट कर डाली । लक्ष्मीप में चूहों ने नारियल की ५० प्रतिशत फसल नष्ट कर दी । अरावली पर्वतशृंखला

की उपत्यका में अच्छी खासी हरियाली है, पर उसका शिखर यदि सर्वत्र हरीतिमा-शून्य है तो उसका करण ही पहाड़ी चूहे ही हैं। राजस्थान और कच्छ के कुछ इलाकों में बार-बार हरियाली का प्रयत्न किया गया, पर चूहों की कृपा से एक पत्ती भी अंकुरित नहीं हो पाई। चूहे अनाज खाकर केवल मानवों का भोजन ही नहीं छिनते, चरागहों को उजाङ्कर पशुओं के पेट पर भी लात मारते हैं।

यदि चूहों द्वारा नष्ट किया जाने वाला १५ प्रतिशत अनाज बचाया जा सके तो भारत को अनाज के आयात की आवश्यकता ही न पड़े। इसीलिए पांचवीं पंच-वर्षीय योजना में खाद्य-कृषि मंत्रालय ने चूहों तथा इसी प्रकार के अन्य प्राणियों से अनाज की रक्षा के लिए साढ़े सात करोड़ ८० की व्यवस्था की है।

चूहों की एक विशेषता यह भी है कि जितना अनाज ये खाते हैं उससे २० गुना खराब करते हैं। इसके अलावा अब यह भी डाक्टरों ने खोज की है कि कम से कम ३५ ऐसी घातक बीमारियां हैं जो चूहों द्वारा फैलती हैं। प्लेग का कारण चूहे हैं, यह तो सर्वविदित है।

इसलिए अब चूहा-उन्मूलन अभियान प्रारंभ हुआ है। उत्तर प्रदेश सरकार ने गत वर्ष इस काम के लिए ३५ लाख रुपये स्वीकार किए थे। हुगली जिले के एक गांव में एक चूहा मारने पर दो पैसे पुरस्कार की व्यवस्था की गई तो ग्रामवासियों ने देखते-देखते एक मास के अन्दर कई मन अनाज बचा लिया।

इसके साथ ही एक मनोरंजक समाचार यह भी पढ़ लीजिए कि फिलिपाइन्स के एक कस्बे में, जो धान की पैदावार के लिए विख्यात था, जब ३० प्रतिशत धान की फसल चूहों ने नष्ट कर दी, तो वहां के मेजर ने एक 'नगर-सुन्दरी' प्रतियोगिता आयोजित की और उसके लिए यह शर्त रखी कि जो लड़की सबसे अधिक चूहों की पूछें जमा करके लाएगी वही प्रतियोगिता में विजयी घोषित की जाएगी।

ये चूहे मोदकप्रिय गणेश जी के संसर्ग से स्वयं भी इतने मोदकप्रिय हो गए हैं कि बीकानेर के कर्णीमाता के मन्दिर में फर्श पर बाजरा बिखरा पड़ा रहता है, पर उसकी ओर चूहे नजर भी नहीं उठाते, और जब भक्तजन आकर देवी पर लड्डू चढ़ाते हैं तो माता देखती रहती हैं और चूहे भोग लगाते हैं।

हे विघ्नविनाशक गणेश जी ! अगली बार अपनी कार्यसिद्धि के लिए जब हम आपका आवाहन करें तो सवारी के अभाव में बड़े आदमियों की तरह आप आने से इन्कार न कर देना, आपके चरणकमलों में यही विनम्र प्रार्थना है।

## सविता देव की सेवा में

एक बार एक इटालियन फ़िल्म देखी थी। उसका एक दृश्य आज भी श्रांखों में घूमता है।

दृश्य यह था : शीत क्रतु में कई दिनों के बाद अचानक सूरज की थोड़ी-सी धूप दिखी। लगभग एक मीटर की परिधि के भू-भाग पर धूप चमकी। जिसकी नजर सबसे पहले उस धूप पर पड़ी वह तुरन्त अपने घर से निकलकर आया और दौड़कर उस धूप वाले बर्तुल के केन्द्र में खड़ा हो गया। जिस-जिसकी नजर पड़ती गई, वही उस घेरे में आकर खड़ा होता गया। धीरे-धीरे संख्या इतनी बढ़ गई कि वह उस धूपीले घेरे में न समझ सकी। तब उन लोगों में आपस में हाथापाई होने लगी कि पहले मैं आया था...पहले मैं आया था...इसलिए मैं धूप वाले हिस्से में खड़ा होऊंगा।

भारतवासियों को इटालियन फ़िल्म के उस दृश्य पर आश्चर्य हो सकता है कि पश्चिम के लोग धूप के लिए लड़ते हैं। जहाँ जिस चीज का अभाव होता है, वहीं उसका असली मूल्यांकन होता है। और जहाँ जो चीज प्रचुरता से उपलब्ध होती है, वहाँ उसकी उपेक्षा होती है, चाहे वह प्रकृति का कितना ही बड़ा वरदान क्यों न हो।

भारत में यही हाल धूप का है। अगर किसी तरह यूरोप और अमरीका के ठण्डे प्रदेशों को धूप के निर्यात की व्यवस्था हो सके तो भारत की समृद्धि का ठिकाना न रहे। विनोबा जी कहा करते हैं कि यदि भारत को धूप का यह वरदान प्राप्त न होता तो सुपोषण के अभाव में यहाँ की अधिकांश जनता क्षय रोग की शिकार होती।

प्राचीन काल से भारत में यदि सविता देव की उपासना होती रही है, तो वह अकारण नहीं है। गायत्री मंत्र का तो देवता ही सविता है। इस समस्त सौर-मंडल का, जिसका एक छोटा-सा भाग पृथ्वी नाम का यह हमारा ग्रह भी है, सूर्य ही तो संचालन करता है। ऋदेव में कहा है :

सूर्य आत्मा जगतः तस्युषश्च ।

—इस अग-जग संसार का आत्मा सूर्य ही है। सूर्य और पृथ्वी का सम्बन्ध तो इतना घनिष्ठ है कि वैदिक वाङ्मय में सूर्य को पिता और पृथ्वी को उसकी दुहिता कहा गया है।

एक कल्पना सूर्य और पृथ्वी के सम्बन्धों को जताने वाली पति-पत्नी की भी है। विवाह के समय वर अपनी होने वाली दुलहिन से कहता है :

द्वौरहं पृथ्वी त्वं तावेव विवहावहै

—द्युलोक का अधिष्ठाता सूर्य पति है और पृथ्वी उसकी पत्नी है और वे दोनों विवाह-सूत्र में आबद्ध हैं तथा संसार के जितने नभचर, जलचर और स्थलचर हैं एवं वृक्ष-वनस्पति हैं, वे सब उनकी सन्तान हैं।

जरा विधाता की लीला तो देखिए। जैकेता हाकेस का कहना है—“यह कितनी आश्चर्यजनक बात है कि एक ओर पृथ्वी का ठोस धरातल और उसके गर्भ में छिपे कठोर खनिज द्रव्य हैं और दूसरी ओर सूर्य की दहकती भयंकर आणविक भट्टी है, और इन दोनों के बीच में मध्यस्थता करने के लिए कोमल वनस्पति-जगत् है, ताकि सूर्य के विकिरण को मोड़कर इतना कोमल बनाया जा सके कि जैविक जगत् की सृजनात्मकता में वह सहायक हो सके। पृथ्वी के शैशवकाल में वायुमण्डल में प्राणवायु (आँखीजन) बहुत कम थी। धीरे-धीरे इस ग्रह को अपनी हरतिमा से आच्छादित करने वाले क्लोरोफिल के कारण उस प्राण वायु का विस्तार होता गया। वही प्रक्रिया आज भी कायम है और इस सबका आधार सूर्य है। यदि वह सुन्दर प्रक्रिया जारी न होती तो इस पृथ्वी पर मनुष्य या अन्य प्राणियों का उद्भव असम्भव था।”

ईसा-पूर्व चौदहवीं सदी का एक मिस्री गीत है :

ओ सूर्य देवता  
तुम स्वर्ग के सिरे पर  
दिव्य रूप से दीप्त होते हो ।  
जब तुम पूर्व के क्षितिज से  
उदय होते हो, तो  
अपने सौन्दर्य से  
अग जग को भर देते हो ।  
अपनी किरणों से  
इस धरा का आर्लिंगन  
करते हुए चढ़ते जाते हो  
ऊपर और ऊपर  
यद्यपि तुम बहुत दूर हो,  
तुम्हारे पदचिह्न  
दिलाई भी नहीं देते  
पर तुम्हारे दर्शन से  
सबकी आंखें चमक उठती हैं।  
और जब तुम आकाश के  
पश्चिमी क्षितिज पर

द्वूब जाते हो, तो पृथ्वी पर  
 मौत-सा अंधेरा छा जाता है,  
 लोग सो जाते हैं, और  
 उनके सिर के नीचे से  
 खाने चोरी हो जाते हैं,  
 और उन्हें पता भी नहीं लगता  
 अंधेरे के सांप-बिछू  
 निकलते हैं और डसते हैं,  
 घरा मौन रहती है,  
 अंधेरा बोलता है,  
 और उनका निर्माता  
 क्षितिज की गोद में  
 विश्राम करता है।  
 तुम्हारे उदय होते ही  
 घरा जागती है,  
 दिन भर चमकती है  
 और चहकती है।  
 जब खोल में पड़ा चूजा  
 कुलबुलाता है,  
 तब तुम उसे सांस देते हो  
 ताकि वह जी सके।  
 तुम उसकी काया को  
 इस लायक बनाते हो  
 कि वह खोल को तोड़ सके।  
 और जब सेये जाने के बाद  
 आण्डे से निकल कर वह  
 अपने पांवों से दौड़ता है  
 तो सृजन की घोषणा होती है

सविता देव को महिमा को केवल भारत और मिस्र ने ही नहीं, ईरान, सुमेरिया और रोम और चीन ने भी समझा। सुदूर पश्चिम के पाताल लोक के मैक्सिको और पेरू में इन्का और मय सभ्यता के अवशेषों की जितनी-जितनी खोज हुई है, उतने ही उनके द्वारा सूर्य नारायण की उपासना के प्रमाण मिले हैं। मैक्सिको में तो पत्थर पर सूर्या एक ऐसा सौर कलैण्डर मिला है कि उसने सब पुरातत्त्व-वेत्ताओं को हैरत में डाल दिया है।

इन प्राचीन जातियों ने खगोल विद्या सम्बन्धी आधुनिक यंत्रों के अभाव में

## १३४ — फिर इस अन्दाज से बहार आई

सौर-मण्डल के सूक्ष्म मानचित्र बनाए हैं और सूर्य, चन्द्र तथा अन्य ग्रहों की गतियों का लेखा रखा है। भारतीय ज्योतिषी गणना द्वारा सूर्य और चन्द्रमा के प्रहण की अविष्य वाणी करने में समर्थ थे।

आबुनिक विद्वान् क्या इस बात को केवल संयोग की संज्ञा देंगे कि सविता देव की उपासना के लिए सर्वाधिक प्रचलित गायत्री मंत्र के १०८ बार जप का विवान है, और इधर सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास से १०८ गुणा ही है (अर्थात् पृथ्वी का व्यास ८,००० मील है तो सूर्य का व्यास है ८, ६४,००० मील)। इसके अलावा स्वस्तिक के चिह्न को भी विद्वान् लोग सूर्य का ही प्रतीक बताते हैं।

पर प्राचीन सम्प्रता के इन अनुयायियों के अलावा अब नवीन सम्प्रता के उपासक वैज्ञानिकों ने भी नये सिरे से सूर्यनारायण की उपासना का व्रत लिया है।

इस युग के मानव की ऊर्जा की भूख बहुत बढ़ रही है। विकास का अर्थ है—ऊर्जा का अधिकाधिक उपयोग। कोयला और पेट्रोल से प्राप्त होने वाली ऊर्जा से ही अब पेट नहीं भरता। फिर आणविक ऊर्जा आई। पर उसकी भी सीमा है। अब तो वैज्ञानिकों को यह भी दिखाई देने लगा है कि इस सदी की समाप्ति तक घरती माता की कोख से निकलने वाले कोयले और पेट्रोल के भण्डार जबाब दे जाएंगे। तब ऊर्जा की आवश्यकता कैसे पूरी होगी? तभी सविता देव के घूप रूपी वरदान की ओर ध्यान गया और अब घूप से ऊर्जा प्राप्त करने की होड़ लगी है।

इस दोड़ में भारत भी शामिल है। जर्मनी, फ्रांस, इजरायल और अमरीका ने इस दिशा में कुछ प्रगति की है, पर आम जनता तक इस सौर ऊर्जा का वरदान पहुंचने में अभी विलम्ब है। भारत ने सौर ऊर्जा आयोग बनाकर पांच वर्ष में इसके लिए पांच करोड़ रुपये अनुसन्धान पर खर्च करने का निश्चय किया है। मुख्य समस्या यह है कि किस प्रकार सस्ते से सस्ते ढंग से सौर ऊर्जा का भण्डार करके घूप के अभाव में भी उसका बिजली की तरह इस्तेमाल किया जा सके।

हे सविता देव! हम भारतवासी तो आपके पुराने उपासक हैं। ऐसी कृपा करिए कि आपके द्वारा दिया हुआ घूप का वरदान हमारी ऊर्जा-प्राप्ति की समस्या हल करके सहस्र गुणित वरदान का रूप धारण कर सके। सेवा में निवेदन यह है कि अब आंगन के साथ हमारी कुटिया के आन्तरिक अंवेरे कोनों को भी आलोकित करिए।

## सबसे बड़ा सुख

संसार का सबसे बड़ा सुख क्या है ?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए दार्शनिकों और विद्वानों की शरण में जाने की जरूरत नहीं । वे तो बात उलझा देते हैं । आम आदमी का उत्तर तो इस कहावत में निहित है :

**बड़ा सुख निरोगी काया ।**

कला-कौशल और ज्ञान-विज्ञान की प्रगति का मुख्य लक्ष्य मानवता की सुख-समृद्धि ही है । इसीलिए इस प्रगति का बहुत बड़ा भाग मानव को रोग-मुक्त रखने के लिए ही काम आ रहा है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि विज्ञान ने कुछ बीमारियों पर चमत्कारपूर्ण ढंग से विजय प्राप्त की है और स्वास्थ्य-सुविधाओं का विस्तार करके मृत्यु-दर बहुत कम कर दी है । संसार की जनसंख्या चिन्ताजनक स्तर तक बढ़ते जाने का एक कारण मृत्यु-दर में यह कमी भी है ।

इस प्रगति के साथ-साथ यह देखकर आश्चर्य होता है कि जहां पुराने रोगों के सफल उपचार ईजाद हो गए वहां ऐसे नये रोग भी पैदा होते जा रहे हैं जिनका पहले कभी नाम भी नहीं सुना गया था । हो सकता है कि ये रोग पहले भी मानव-जाति को आक्रान्त करते रहे हों, पर उनके बारे में किसीको जानकारी ही नहीं थी, तो कोई क्या कहे ?

आवृन्दिक युग के नये रोगों में सबसे अधिक प्रचलित है 'हार्ट अटैक' और कैंसर । ज्ञानवान लोग कहते हैं कि कैंसर तो 'कर्कट' के रूप में आयुर्वेद के ग्रन्थों में वर्णित है, पर लगता है कि वर्तमान पीढ़ी बुद्धि की उपासना में ज्यों-ज्यों लीन होती गई त्यों-त्यों उस पर हृदयहीनता हावी होती गई, और शायद 'हार्ट अटैक' उसी हृदयहीनता के युग की शुरूआत है । जब हृदय की उपेक्षा ही युग-धर्म बन गया तब यह बेचारा शरीर में रहकर ही क्या करेगा ? लिहाजा 'हार्ट फेल !'

अब तक संसार के सब डाक्टर कुपोषण को सब बीमारियों की जड़ बताते रहे हैं । पर अब विशेषज्ञों का कहना है कि मानव-जाति का जितना शत्रु कुपोषण है, उससे बढ़कर सुपोषण या अतिपोषण है । खासकर हृदय रोग और कैंसर इन दोनों के लिए ही अतिपोषण जिम्मेवार है । लंदन के प्रसिद्ध कार्डियोलोजिस्ट डा० जे० एफ० गुडविन आजकल दिल्ली आए हैं । उनका कहना है कि वसायुक्त मांस न केवल हृदय के लिए हानिकारक है, पेट-चाती तथा प्रजननांगों के विविध प्रकार के कैंसरों के लिए

## १३६ □ फिर इस अन्दाज से बहार आई

भी वही जिम्मेवार है।

प्राचीन लोग कहा करते थे कि जैसा खावे अन्न, वैसा बने मन्। वह जरा सूक्ष्म बात थी। पर शरीर तो है ही अन्नमय कोष, वह अन्न से नहीं बनेगा तो किस चीज से बनेगा? 'अन्न' का अर्थ केवल अनाज नहीं, बल्कि जो भी कुछ खाया जाए। प्राचीन मनीषी यहां भी पते की बात कह गए:

अद्यते अति च भूतानि, तस्मादन्नं तदुच्यते ।

—अन्न को अन्न इसलिए कहते हैं कि सब प्राणधारी इसे खाते हैं और यह स्वयं भी प्राणधारियों को खा जाता है। जब आवश्यकता से अधिक भोजन किया जाता है, तब सचमुच अन्न प्राणियों को खा जाता है। वही अतिपोषण वाली बात!

सम्यता के विकास के साथ-साथ आदमी के भोजन में भी नफासत आती गई। प्रकृति से उत्पन्न आहार को मनुष्य ने मिर्च-मसालों तथा चीनी के सहयोग से और अधिक स्वादिष्ट बनाया, केवल इसीलिए कि इसके उपभोग की मात्रा बढ़ सके। चोकर रहित आटा या मैदा, पालिश किए हुए चावल डिब्बाबन्द अचार-मुरब्बे-जैली और इतनी तरह की मिठाइयाँ—इन सबको देखकर मुँह में पानी आने लगा, और भोजन के उपभोग की मात्रा बढ़ती ही गई। पर साथ ही मनुष्य ने अपने लिए रोगों को निमन्त्रण देना भी प्रारम्भ कर दिया। महात्मा गांधी यदि चीनी को 'सफेद जहर' कहा करते थे, तो वह अकारण नहीं था।

आदमी को इतने से ही संतोष नहीं हुआ। उसने मद्यपान और धूम्रपान को भी प्रगति का प्रतीक मान लिया। परिणाम! उसने अपने हाथों अपनी कब्र खोदनी शुरू कर दी। विशेषज्ञों का कहना है कि संसार भर में कैंसर के जितने भी केस होते हैं, उनमें दो-तिहाई केसों का कारण मद्यपान और धूम्रपान की अधिकता है। कैंसर के निवारण के लिए निरन्तर प्रयत्नशील चिकित्सकों के अनुसार पिछले दिनों जापान को छोड़कर संसार के सब देशों में पेट के कैंसर में कमी आई है। जापान में कमी न आने का कारण यह है कि वहां पालिश किए हुए चावल धुएं में पकी मछली और डिब्बाबन्द आहार का प्रयोग बड़ा है।

इसके ग्रलावा समृद्ध देशों में अनिन्द्रा और रक्तचाप के लगातार बढ़ते जाने का कारण अतिपोषण के साथ-साथ वह तनावपूर्ण जीवन भी है जो बे जीते हैं। हरेक आदमी क्षणभर में ही समृद्धि या सफलता के शिखर तक पहुंच जाना चाहता है। जब वह क्षण बीत जाता है और उसे सफलता नहीं मिलती तो उसके पास सिवाय रिक्तता के और कुछ नहीं रहता। रिक्तता—अंदर भी, बाहर भी। और तब जीना इतना बड़ा भार लगने लगता है कि नींद की गोलियाँ खाकर सदा के लिए सो जाने के सिवाय चैन नहीं।

एक बार गरुड़ ने महर्षि धनवन्तरि से पूछा था :

कोऽरुद्ध कोऽरुद्ध कोऽरुद्ध ।

—रोग-रहित कौन है ? घनवन्तरि ने इसका उत्तर इन शब्दों में दिया था :

हितभूक् मितभूक् शाकभूक् शतपदगामी च वामशायी च ।

अविजित मूत्र पुरषिः स्वगवर सोऽरुक् सोऽरुक् सोऽरुक् ।

—हे पक्षिराज गरुड ! जो व्यक्ति भोजन में कुपय्य नहीं करता, परिमित मात्रा में भोजन करता है, हरे साग-सब्जी और ताजे फल स्वाता है, रात्रि भोजन के बाद सौ कदम भ्रमण करता है और मध्याह्न भोजन के बाद थोड़ी देर बाँई करवट लेटता है, तथा मूत्र और पुरषि के वेग को नहीं रोकता, वही निरोगी है ।

जो निरोगी है, उसने संसार का सबसे बड़ा सुख पा लिया ।

## राष्ट्रमूर्ति श्रद्धानन्द

सन् १९५७ की राज्यक्रति को विफल करने में जिन लोगों ने अंग्रेजों का साथ दिया था, उनके बारे में तत्कालीन शासकों की यह धारणा बनी कि भविष्य में यही लोग भारत में अंग्रेजी हकूमत को कायम रखने के दृढ़ स्तम्भ बनेंगे। इसलिए अंग्रेजों ने जहां विद्रोहियों को नृशंसतापूर्वक दण्डित किया, वहां सहयोगियों को अपनी ओर से पुरस्कृत करने में भी कसर नहीं छोड़ी। देश-विभाजन के बाद जो हिस्सा पश्चिमी पाकिस्तान कहलाया, उस भूखण्ड पर अंग्रेजों की कृपादृष्टि तभी से चली आ रही है। पाकिस्तान के प्रति जिस कोमल भाव के कारण उस प्रदेश को कभी कम्यूनिज्म से लड़ने के नाम पर और कभी भारत-विरोध की प्रचलन मनोवृत्ति के कारण शस्त्रास्त्रों से लैस किया जाता रहा है, उसकी पूर्वपीठिका इसी साम्राज्य-वादी कूटनीति में देखी जा सकती है।

परन्तु अंग्रेजों की इस कूटनीति को भाँपकर उसका प्रतिकार करने का प्रयत्न यहां कभी भर नहीं सका और ऐसे तेजस्वी पुरुष इस देश में निरन्तर पैदा होते रहे जो भारतीय राष्ट्रवाद को अपनी प्राण-धारा से सींचते रहे। यों समस्त उत्तर भारत में, पर खास तौर से पंजाब में, इस साम्राज्यवादी षड्यन्त्र को विफल करने का श्रेय जिन व्यक्तियों को दिया जा सकता है, उनमें अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द अग्रगण्य हैं।

ऋषि दयानन्द की क्रान्तिकारी विचारधारा से प्रभावित होकर उन्होंने इस तथ्य को हृदयंगम कर लिया था कि अंग्रेजी शासन से भी अधिक खतरनाक वह अंग्रेजियत है जो विदेशी भाषा, विदेशी आचार-विचार और विदेशी संस्कृति के माध्यम से इस देश की सन्तति को मानसिक दृष्टि से गुलाम बना रही है। मन गुलाम होने पर तन की गुलामी भी नहीं अखरती। देश में केवल राजनैतिक पराधीनता को समाप्त करने का स्वप्न देखने वाले भी बहुधा इस मानसिक पराधीनता की उपेक्षा करते रहे। परन्तु मानसिक पराधीनता से मुक्ति पाए बिना केवल राजनीतिक स्वाधीनता कारण नहीं हो सकती। स्वतंत्र होने के पश्चात् भी यदि 'तंत्र' दूसरों का ही चलता रहे, तो क्या लाभ ?

विदेशी शिक्षा-दीक्षा, विदेशी चित्तन, विदेशी वंश, विदेशी भाषा और विदेश-पलायन का मोह आज भी कम नहीं है। वह सुविधा-परस्ती का रास्ता है। पर राष्ट्र के कल्याण का राजमार्ग तो त्याग-तपस्या और कष्टों की गलियों से गुंथा है। युवा-

पीढ़ी को संस्कारवान्, चरित्रवान् और भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित बनाने के लिए स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का पुनरुद्धार किया, समाज में व्याप्त कुरीतियों का निवारण करने के लिए स्वयं अपने घर-परिवार से पहल की ओर देश के स्वातंत्र्य-संग्राम में अद्भुत निर्भक्ति का परिचय दिया। धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक और राजनीतिक क्षेत्र में कदम-कदम पर उनकी स्वभावगत वीरता के दर्शन होते हैं।

'हम' शब्द की व्याख्या उन्होंने की थी—ह अर्थात् हिन्दू और म अर्थात् मुसलमान—वह हिन्दू-मुस्लिम एकता की एक नई परिभाषा ही नहीं थी, बल्कि इसे जिस रूप में उन्होंने चरितार्थ करके दिखाया था—वह भी इतिहास की अद्वितीय घटना है।

स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन का मूल सूत्र था—श्रद्धा। सत्य में श्रद्धा ही उनके जीवन की नियामक शक्ति थी। इसी श्रद्धा ने उन्हें विकट से विकट परिस्थिति से जूझने की शक्ति दी थी। रवि बाबू ने लिखा है—“विवाता जब दुःख को हमारे पास भेजता है, तब वह अपने साथ एक प्रश्न लेकर आता है। वह पूछता है—तुम हमें किस भाव से ग्रहण करोगे? जब उद्धार का कोई उपाय नजर नहीं आता, तब उस विपद के साथ व्यवहार के ढंग पर ही इस प्रश्न का उत्तर निर्भर होता है। हम उससे डरे या उसके सम्मुख छाती तानकर खड़े हो जाएं।” विपद के सम्मुख छाती तानकर खड़े होने की यह शक्ति बिना अखण्ड श्रद्धा के नहीं आती।

काका कालेलकर ने लिखा है—जिस दिन स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने प्रिय पुत्र को लेकर गुरुकुल की स्थापना के संकल्प से गंगा के तट पर निवास किया, वह दिन भारतवर्ष के वर्तमान इतिहास में महत्व का था। उस दिन उन्होंने जाति के उद्धार की नींव डाली। जिस दिन उन्होंने अन्त्यज बालकों को अपनाया उसी दिन हिन्दू जाति के संगठन का सूत्रपात किया। और जिस समय उन्होंने पत्थर, गोली और खंजर की तरफ तुच्छता की नजर से देखा, उसी दिन उन्होंने भारतवर्ष को निर्भयता का पाठ पढ़ाया। अपनी अतुल श्रद्धा से उन्होंने अपना दीक्षा-नाम कृतार्थ किया। कायरों के जमाने में इस पुरुषसिंह की निर्भयता बहुत लोग न समझ पाए होंगे और संशय की नजर से उन्हें देखा होगा, पर ऐसा समय जरूर आएगा जब विरोधी भी स्वीकार करेंगे कि भारतवर्ष का यह आधुनिक संन्यासी सबको मित्र की दृष्टि से ही देखता था। सचमुच श्रद्धानन्द राष्ट्रमूर्ति थे।

इस राष्ट्रमूर्ति के जीवन की तेजस्विता राष्ट्र की आत्मा को सदा तेजस्विता की ओर अग्रसर करती रहे।

## भारत में वरों की खोज

मातृभूमि का ममत्व भी कैसा दुर्निवार होता है ? इतिहास का एक प्रसंग है : अकबर ने यह नियम बनाया था कि देशी रजवाड़ों के राजाओं को भी सांत्राज्य की सेवा के लिए चाहे जब रणक्षेत्र में भेजा जा सकता है । एक बार बीकानेर नरेश को दक्षिण के किसी मोर्चे पर भेजा गया । बीकानेर की भूमि मरुप्रबान है, यह बात सुविदित है । मरुभूमि में वृक्ष बहुत कम होते हैं । कहीं-कहीं ब्रज के करील जैसा एक भाड़ होता है जिसे वहाँ के लोग 'फोग' कहते हैं । दक्षिण यात्रा के समय एक दिन बीकानेर नरेश को एक फोग का भाड़ दिखाई दिया । उन्होंने तुरन्त अपना धोड़ा रोक दिया और उत्तरकर पैदल भाड़ की ओर बढ़े । थोड़ी देर बाद साथी सरदारों और अन्य योद्धाओं ने आश्चर्य के साथ देखा कि महाराज बीकानेर उस भाड़ का आर्मिगन किए खड़े हैं और उनकी आंखों से प्रेम-विहृता के कारण आंसुओं की धार बहे रही है । साथी सरदार इस रहस्य को नहीं समझ सके । किन्तु साथ का एक कवि राजा के मन की भावना ताड़ गया और उसने इस दोहे में उसे यों व्यक्त किया :

तूं से देसी रुखड़ा न्हे परदेसी लोग ॥

म्हने अकबर तेडिया तूं कत आयो फोग ॥

—अरे फोग, हमें तो अकबर के आदेश के कारण विवश होकर देश छोड़ना पड़ा, पर तुझे क्या विवशता थी जो तू देश छोड़कर यहाँ चला आया ?

मातृभूमि के प्रति लोगों का इतना पक्षपात क्यों होता है ? और तो और, महाकवि तुलसीदास के मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी अयोध्या को देखते ही कह उठे :

अति प्रिय भोहि यहाँ के वासी ।

मम धामदा पुरी सुखरामसी ॥

राम जैसे राष्ट्रपुरुष को भी अयोध्या के प्रति इतना भोहि था ।

कविकुल-गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता है—‘दुई विधा जमीं’ । इस कविता का नायक उपेन्द्र नामक व्यक्ति है जिसके पास दो बीघा जमीन थी । गांव के जमींदार ने जमीन नीलाम करवा ली । बेचारा उपेन्द्र निःस्व होकर गांव से निकल गया और साढ़ु बनकर देशभर में भटकता फिरा । किन्तु वह जहाँ कहीं भी गया, उसे अपनी वह दो बीघा जमीन नहीं भूली :

भूरे, सागरे, विजने, नगरे जखन जैखाने भूमि ।

तबु निश्चिदन भूलते पारिनि सेई विधा दुई जमीं ॥

— वन-पर्वत, जल-स्थल, जहाँ-तहाँ भी वह भटकता रहा, उसे रात-दिन उस दो बीघा जमीन की याद सताती रही। क्यों? क्या इसलिए कि वही उसकी जीविका का आधार थी? निस्संदेह, यह भी एक कारण रहा होगा। किन्तु इससे भी बड़ा कारण एक और था। आग्रह-कुंजों से घिरे छोटे-छोटे बंगीय ग्राम, जहाँ पेड़ों की छाया तले चरवाहे गाएं चराते हैं, जहाँ कि नदियों का स्वच्छन्द-शान्त प्रवाह जनता के जीवन का अंग बन गया है, जहाँ आँखों और हृदय में मधु छिपाए ग्रामवधुएं जल-कलश लिए अपने वरों की ओर आती-जाती हैं, ऐसे बिलुड़े ग्राम की मादक सृतियां कैसे भुलाई जा सकती हैं? उपेन्द्र ठीक ही कहता है:

माँ, बोलिते प्राण करे आन-बान, चौखे आसे जल भरे।

— इन सुधियों को मुख से कहते नहीं बनता, आँखों में आँसू भर आते हैं।

पर ऐसा क्यों होता है? क्या जन्मभूमि और मातृभूमि के प्रति ऐसी निष्ठा बुद्धिगम्य है? क्या संसार में अपने जन्मस्थान से बढ़कर कोई और स्थान नहीं होता?

पर जीवन सदा बुद्धि का ही तो अनुगामी नहीं होता। यदि बुद्धि ही जीवन की संचालिका होती तो सर्वत्र गेहूं ही गेहूं बोया जाता। फूलों की क्यारियों में भी शाक-सब्जी व तरकारी ही उगाई जाती। और सच तो यह है कि जिसे आप 'कालापानी' कहते हैं वहाँ के निवासियों की दृष्टि में वह कालापानी भी स्वर्ग से कम नहीं होगा। जिन उत्तरी और दक्षिणी घुर्वों को मनुष्य के निवास के योग्य हम नहीं समझते वहाँ भी जो लोग कुछ दिन रह लेंगे, उन्हें वहाँ की सृतियां सदा कचोटी रहेंगी। यदि किसीका जन्म ही उन प्रदेशों में हुआ हो तो उसके लिए ये ही प्रदेश नंदनकानन के समकक्ष बन जाएंगे।

परन्तु कभी-कभी परिस्थितियां भी कैसा षड्यन्त्र करती हैं? हमारे युवकों और नेताओं का विदेश-प्रेम देखकर आप चाहे कुछ भी क्यों न कहें, पर आपको यह तो मानना ही पड़ेगा कि भारत की नई पीढ़ी का एक वर्ग ऐसा है जो यह मानता है कि उसका जन्म गलती से भारत में हो गया है। जबकि होना चाहिए था पश्चिम के किसी देश में। उनके पूर्वज भले ही यह रटते-रटते स्वर्ग सिधार गए कि 'दुर्लभ भारत जन्म'—भारत में जन्म लेना बड़ा दुर्लभ है, किन्तु ये लोग तो भारत में जन्म लेने को अपना सबसे बड़ा दुर्भाग्य मानते हैं।

खैर, देश-विदेश के इस चक्कर में पड़ने से क्या लाभ? अपने पड़ोसी की ही बात करें। स्यालकोट के पांच हिन्दू अपनी लड़कियों के लिए वर तलाश करने के लिए भारतीय सीमा में घुस आए और उन्हें सीमा-पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। इस प्रकार अवैध रूप से प्रवेश करने वालों ने भारतीय सैन्याधिकारियों को बताया कि पाकिस्तान में सुयोग्य हिन्दू वरों का अभाव है, इसलिए गिरफ्तारी का खतरा उठाकर भी हम अपनी कन्याओं के लिए सुयोग्य वरों की खोज में भारतीय क्षेत्र में आए हैं। हाय, बिचारे इतने अभिशापग्रस्त हैं कि उन्हें पाकिस्तान में वर प्राप्ति की आशा ही नहीं रही। आखिर भारत ही वरणीय निकला न, यही भूमि वरेष्य सिद्ध हुई न! अरे-

भाई, पुराणे यों ही तो नहीं गा गए हैं : गायन्ति देवाः किल गीतकानि वन्यास्तु ये भारत भूमिभावे ।

—जिनका भारत भूमि में जन्म हुआ है वे वन्य हैं । यही भारत भूमि स्वर्ग और अपवर्ग का हेतु है क्योंकि यहाँ के निवासी देवताओं से भी बढ़कर हैं । भारत-निवासी भले ही आज अपने आपको अभिशापग्रस्त समझें, पर यह जानकर तसल्ली होगी कि पाकिस्तानियों की दुष्टि में वे अब भी वर-योग्य हैं ।

पाकिस्तान में ऐसे लाखों लोग हैं जिनका जन्म इस तथाकथित भारत में हुआ था और भारत में ऐसे लाखों लोग हैं जिनका जन्म तथाकथित पाकिस्तान में हुआ था । क्या दोनों को अपनी-अपनी जन्मभूमियों की मधुर स्मृतियाँ नहीं कचोटती होंगी ? क्या इतिहास और भूगोल ने उन्हें एक नहीं बनाया है ?

तो फिर किसने यह बीच में विभाजक लकीर खींच दी ? कौन कहता है कि पाणिनि एवं चाणक्य की तक्षशिला भारत के बाहर हो सकती है ? कौन कहता है कि लव की राजधानी लाहौर और कुश की राजधानी कसूर भारत का अंग नहीं है ? भक्त प्रह्लाद की नगरी—मुलतान—भारत से बाहर कहीं हो सकती है ? पूर्ण भगत की नगरी स्यालकोट किसी भारतेतर प्रदेश में रह सकती है ? फिर लौटकर रवीन्द्र की ही बाणी याद आ रही है :

घरे घरे भोर घर आछे आमि सेई घर माकि खुजिया देशे देशे भोर देश आछे आमि सेई देश नीबा जूकिया

—हरेक घर में मेरा घर है, मैं उसी घर को खोज रहा हूँ । हरेक देश में मेरा देश है, मैं उसी देश को प्राप्त करने के लिए जूझ रहा हूँ । □ □ □

# बहुचर्चित कुछ चुनी हुई पुस्तकें

डॉ. राममनोहर लोहिया (सजिल्ड)	डॉ. राजेन्द्र मोहन भट्टनागर	₹.००
डॉ. अम्बेडकर बाबा साहब (सजिल्ड)	" "	₹.००
स्वामी विवेकानन्द (सजिल्ड)	राजकुमार श्रीनिल	₹.००
राष्ट्रनेता स्वामी दयानन्द	" "	₹.००
देशभक्त स्वामी श्रद्धानन्द	" "	₹.००
भारतीय दीरांगनाएँ (सचित्र सजिल्ड)	" "	₹.५०
वीरता भरा जीवन (सचित्र सजिल्ड)	" "	₹.००
प्यारे नानक की प्यारी-प्यारी बातें (सचित्र सजिल्ड)	धर्मपाल शास्त्री	₹.००
वीरता भरा जीवन (सचित्र सजिल्ड)	धर्मपाल शास्त्री	₹.००
वैज्ञानिक योगासन और स्वास्थ्य	डॉ. सत्य पाल	₹.००
(७८ योगासनों के चित्र एवं वृतांत सहित)		
साइंस की करामात (सचित्र सजिल्ड)	धर्मपाल एम० ए० तथा ज्ञानचंद एम० एस-सी०	₹.००
परमाणु दर्शन (सचित्र सजिल्ड)	प्रो० सुधाकर एम० ए०	₹.००
ओलिम्पिक (खेल कूद की ३२ चित्रों सहित सर्वोत्तम सजिल्ड पुस्तक)	अजय भल्ला	₹.००
भारत की प्राचीन नीतियाँ (विमोचन महामहिम उपराष्ट्रपति वा० दा० जती द्वारा, भूमिका बाबू जगजीवन राम द्वारा)	सिद्धान्तालंकार आचार्य दीनानाथ	₹.००
आतंक की आत्मकथा (सजिल्ड) (आपात स्थिति एवं भूमिगत आदोलन की रोमांचकारी तथा सच्ची घटनाएं)	रावेश्याम शर्मा	₹.००
श्रद्धा तेरो नाम (सजिल्ड) (उद्देश्य पूर्ण ५० मार्मिक गाथाएं)	ब्रजभूषण	₹.००
मनमन्दिर के द्वारे (सजिल्ड) (विवेकपूर्ण हृदयग्राही गाथाएं)	ब्रजभूषण	₹.००
चरित्र बल (सजिल्ड)	धर्मपाल शास्त्री एम० ए०	₹.००
सच्चाई की करामात (सचित्र सजिल्ड)	सत्यार्थी	₹.००
पढ़ाई की करामात (सचित्र सजिल्ड)	धर्मपाल शास्त्री एम० ए०	₹.००

राष्ट्रीय एकता (सचित्र सजिल्ड)	प्रो० रामस्वरूप कौशल	६.००
हम एक हैं (सचित्र सजिल्ड)	" " "	७.००
देशभक्त शहीदों की गाथाएं (सचित्र सजिल्ड)	श्री व्यथित हृदय	८.००
धर्मवीर शहीदों की गाथाएं (सचित्र सजिल्ड)	" "	७.००
एकता निर्भयता और सदाचार (सचित्र सजिल्ड)	देवदत्त द्विवेदी	५.००
देशभक्त बनें (सचित्र सजिल्ड)	सत्यव्रत शर्मा	४.५०
चरित्र बल (सजिल्ड)	धर्मपाल शास्त्री एम० ए०	८.००
देवगिरि से हिमगिरि तक (सचित्र सजिल्ड)	भरतराम भट्ट	८.५०
सुख की सोज (सजिल्ड)	डॉ० सत्यपाल	८.००
अनमोल वचन (सजिल्ड)	प्रो० सुधाकर एम० ए०	७.००
अवसरवादी बनो (सचित्र सजिल्ड) (हास्य व्यंग्य की लघु कथाएं)	भरतराम भट्ट	५.००
मुस्कान महफिल (सजिल्ड) (उदू के प्रसिद्ध लेखकों की चुनी हुई हास्य-व्यंग्य की कहानियां)	जगन्नाथ प्रभाकर	१२.००
उत्तर भारत की लोक कथाएं (सजिल्ड) लायब्रेरी संस्करण (रोचक एवं भावपूर्ण, हृदयग्राही ८२ लोककथाएं)	प्रो० श्रीचन्द्र जैन	१४.००
मंगलोदय (सजिल्ड) (रुद्धियों, सामाजिक कुरीतियों और भ्रष्टाचार को समाप्त कर समाज-सुधार, अछूतोदार तथा देहात-सुधार पर एक रोचक उपन्यास)	ब्रजभूषण	१६.००
वज्राधात (सजिल्ड) (सोजपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास)	हरिनारायण आटे	१६.००
फूल मेरे आँसू (सजिल्ड) (सामाजिक उपन्यास)	विमल कुमार जैन	८.००
उषाकाल (किशोर संस्करण) सजिल्ड	हरिनारायण आटे	८.००
तूफान के बाद (सजिल्ड) (रोमांचकारी तथा दीर रस पूर्ण उपन्यास)	जगन्नाथ प्रभाकर	८.००
सुखी परिवार (सचित्र)	श्रीचन्द्र जैन	४.००

## किताबघर

मेन रोड, गांधीनगर, दिल्ली-११००३१